श्री दिगम्बर जैन कुन्थु विजय ग्रंथमाला समिति

चौदहवाँ पुष्प

धर्म ज्ञान एवं विज्ञान

लेखक :

परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थुसागरजी महाराज के परम शिष्य

श्री १०८ उपाध्याय सिद्धान्त चक्रवर्ति मुनि कनकनन्दिजी महाराज

प्रकाशन संयोजक

शान्तिकुमार गंगवाल

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन कुन्थु विजय ग्रन्थमाला समिति

कार्यालय :

१६३६, जौहरी बाजार घी वालों का रास्ता, कसेरों की गली,

जयपुर–३०२००३ (राजस्थान)

परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य वात्सल्य रत्नाकर,
श्रमणरत्न स्याद्वाद केशरी कुन्थुसागरजी महाराज के
विशाल संघ सानिध्य में माह दिसम्बर १९८८ में
आरा (नगर) बिहार में आयोजित
पंचकल्याणक महोत्सव के
शुभावसर पर
प्रकाशित



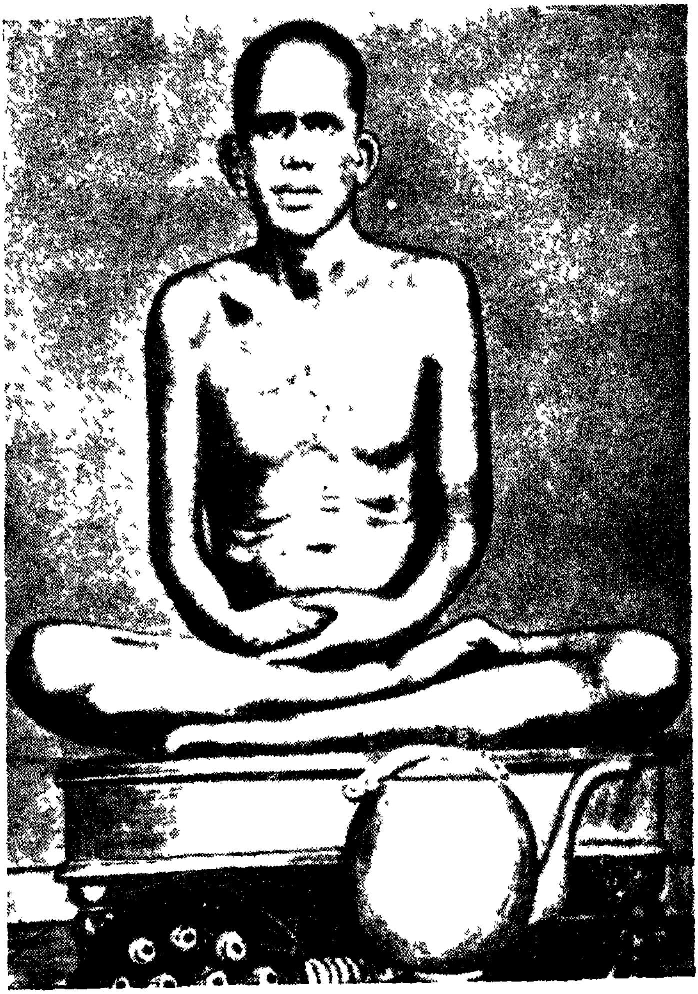
मूल्य : [redacted]/१५) रुपये
(डाक व्यय अतिरिक्त)

मुद्रक : मूनलाइट प्रिन्टर्स, जयपुर-३

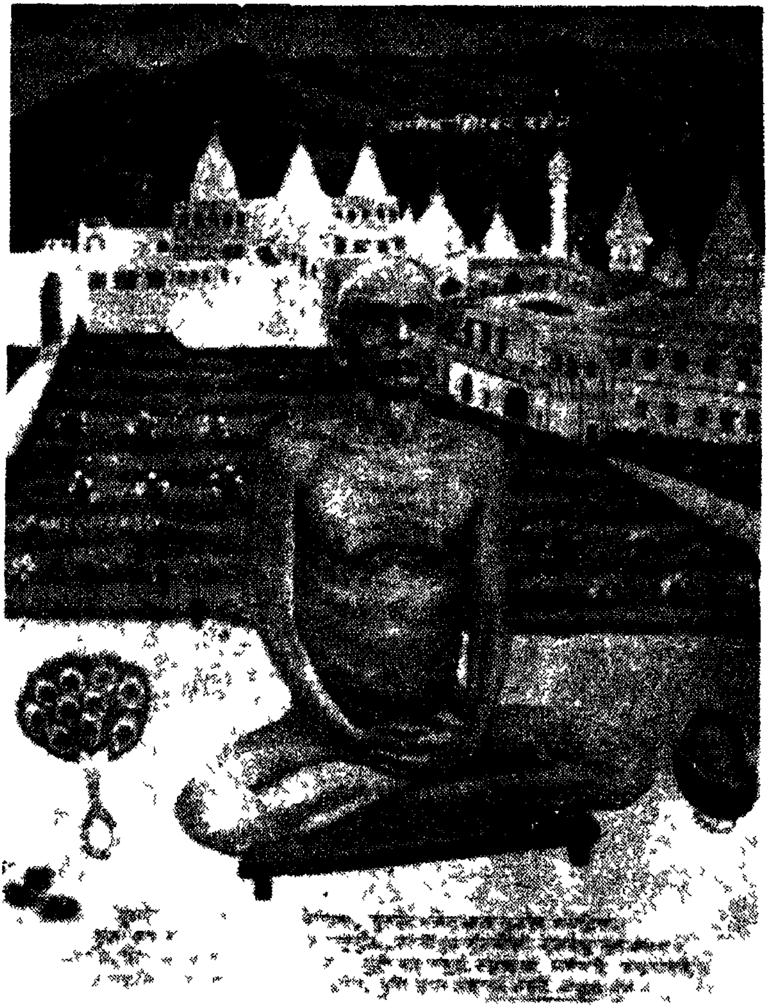
पुस्तक प्राप्ति स्थान एवं कार्यालय :
श्री दिगम्बर जैन कुन्थु विजय ग्रन्थमाला समिति
१९३६, जौहरी बाजार घी वालों का रास्ता,
कसेरों की गली, जयपुर-३ (राज.)



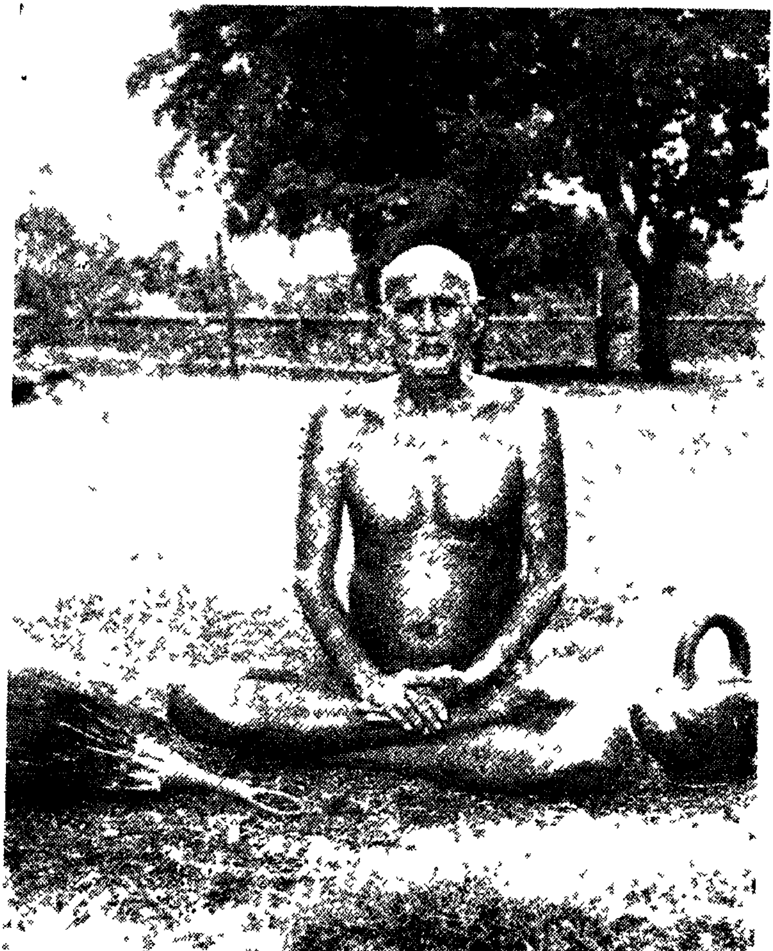
श्री १००८ भगवान महावीर स्वामी



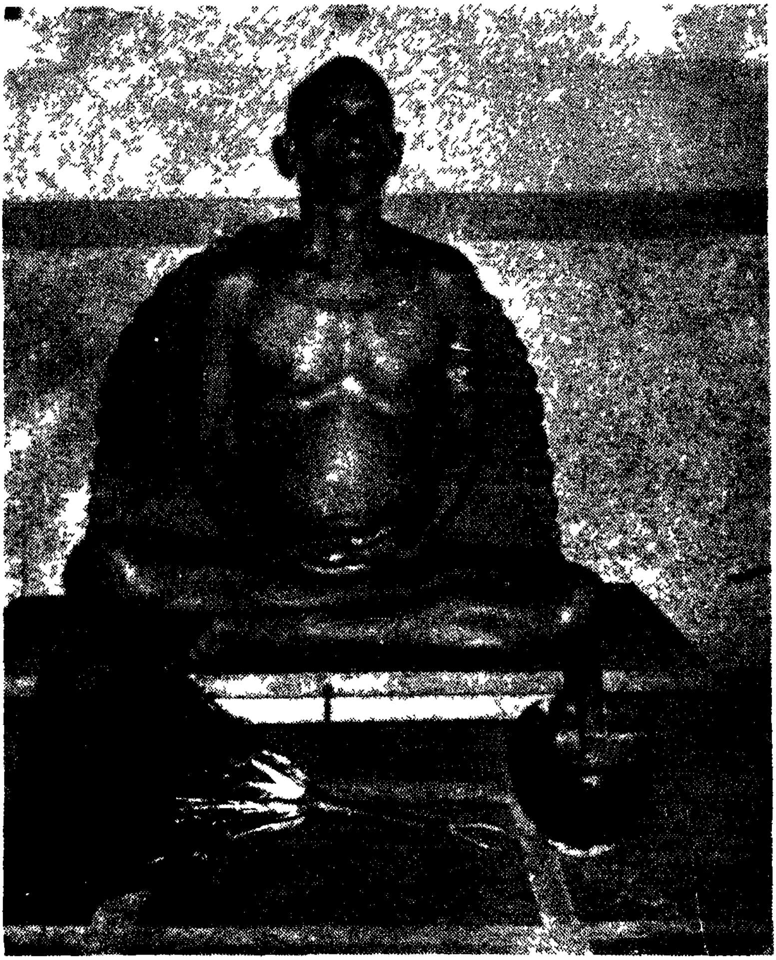
परम पूज्य समाधि सम्राट चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य
आदि सागरजी महाराज (अकलीकर)



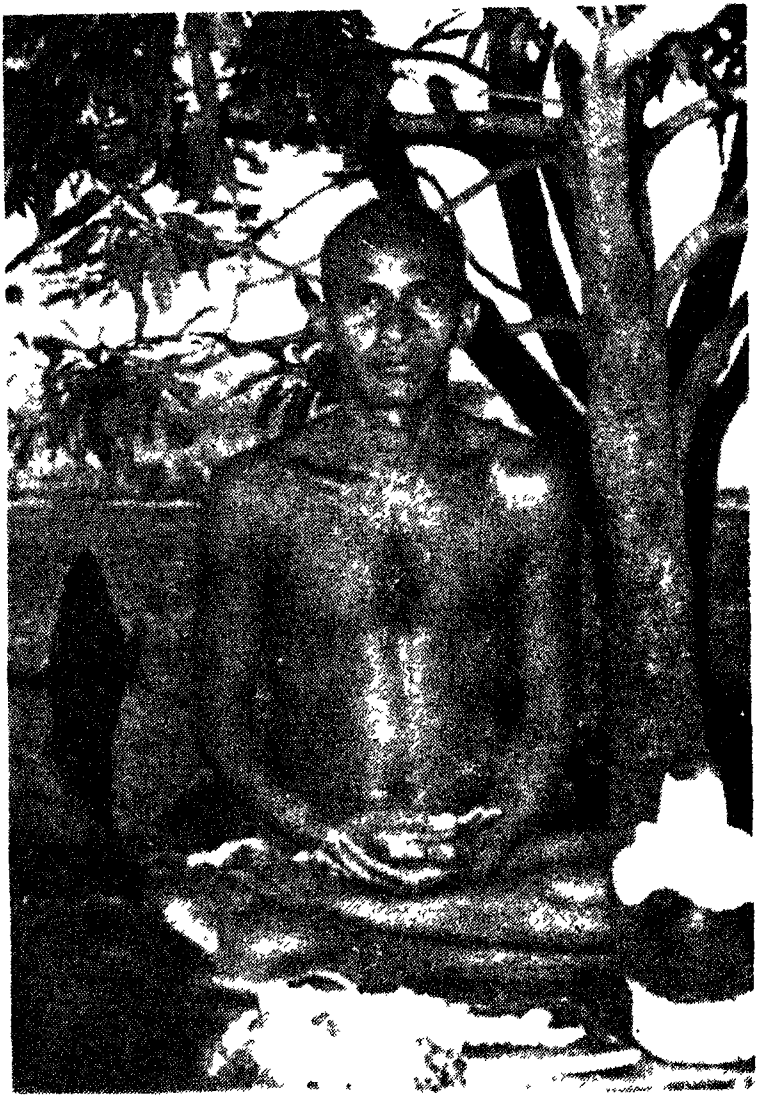
परम पूज्य समाधि सम्राट तीथ भक्त शिरोमणि श्री १०८ आचार्य-
रत्न महावीरकीर्तिजी गुरु महाराज साहब



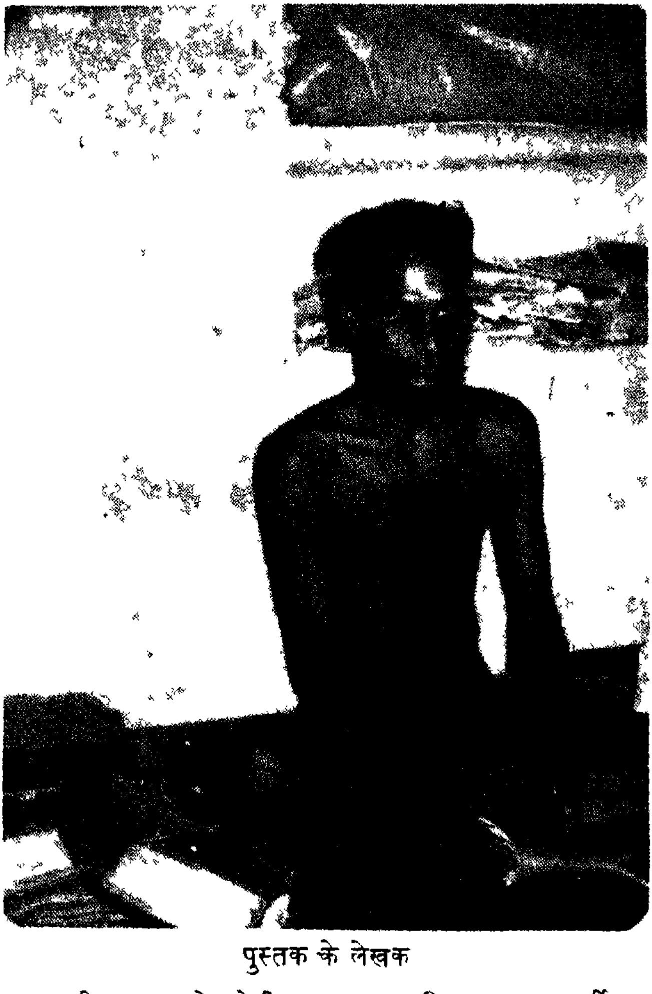
परम पूज्य सन्मार्ग दिवाकर निमित्तज्ञान शिरोमणि खण्ड-विद्या-
धुरन्धर श्री १०८ आचार्यरत्न विमलसागरजी महाराज



परम पूज्य श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्तिजी महाराज
के पट्टाधीश आचार्य श्री १०८ मक्ति पथ-नायक
मत शिरोमणि सन्मतिमागरजी महाराज



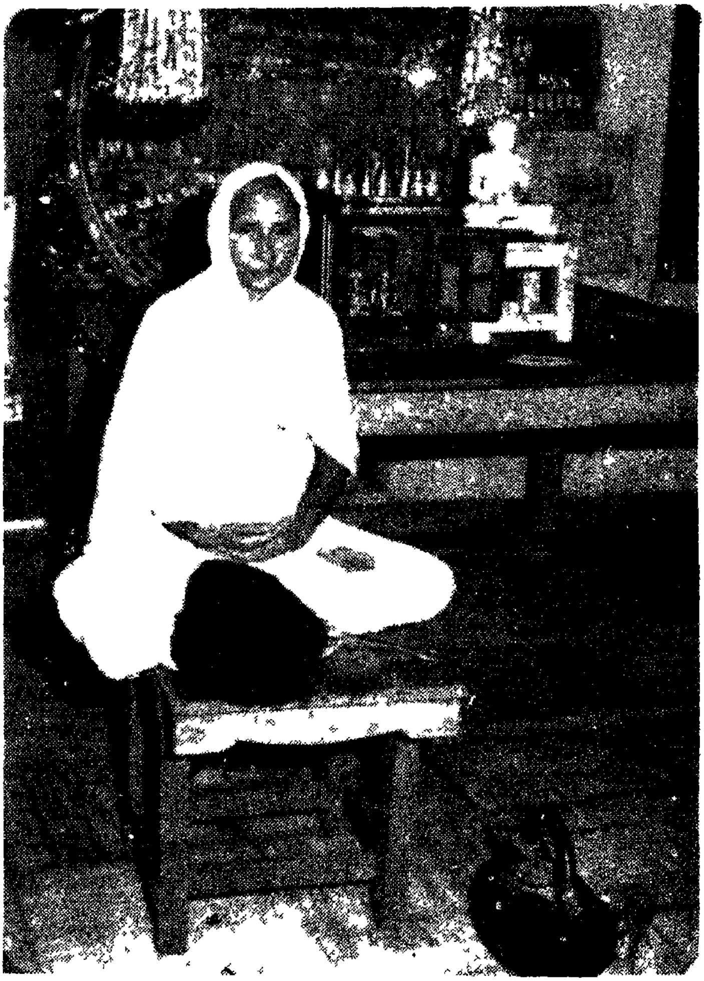
परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य वात्सल्य रत्नाकर, श्रमणरत्न,
स्याद्वाद केशरी स्वामि श्री कुन्थुसागरजी महाराज



पुस्तक के लेखक

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी उपाध्याय सिद्धान्त चक्रवर्ती

श्री १०८ कनकनन्दिजी महाराज



परम पूज्य श्री १०५ गणिनी आर्यिका विदुषीरत्न, सम्यकज्ञान
शिरोमणि, सिद्धान्त विशारद, जिनधर्म प्रचारिका
विजयामती माताजी

परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य, वात्सल्य रत्नाकर, श्रमणरत्न, स्याद्वाद केशरी स्वस्ति श्री कुन्थु सागरजी महाराज का मंगलमय

शुभाशीर्वाद



बड़े हर्ष की बात है कि सिद्धान्त चक्रवर्ती उपाध्याय श्री १०८ मुनि कनकनन्दिजी महाराज द्वारा लिखित पुस्तक धर्म ज्ञान एवं विज्ञान का प्रकाशन चौदहवें पुष्प के रूप में श्री दिगम्बर जैन कुंथु विजय ग्रन्थमाला समिति जयपुर (राजस्थान) से हो रहा है।

इस ग्रन्थमाला से अच्छे से अच्छा साहित्य का प्रकाशन हो रहा है। इस ग्रन्थमाला के कर्मठ कार्यकर्त्ता

प्रकाशन संयोजक श्री शान्ति कुमारजी गंगवाल हैं। जो बहुत ही परिश्रम करते हैं। उन्ही के अथक परिश्रम के फलस्वरूप इस ग्रन्थमाला का विकास हो रहा है।

अल्पावधि में इस पुस्तक का प्रकाशन कार्य पूरा कराने में भी श्री शान्तिकुमारजी गंगवाल व उनके सुपुत्र प्रदीप कुमार जी गंगवाल ने बहुत ही परिश्रम किया है। इनको मेरा बहुत-बहुत शुभाशीर्वाद है। ग्रन्थमाला के अन्य सहयोगी कार्यकर्त्ताओं को भी आशीर्वाद है।

पुस्तक उपाध्याय श्री की लिखी हुई है। उनकी लेखनी विद्वता पूर्वक है, पुस्तक में अच्छा वर्णन है।

अनेक शास्त्रों व पुस्तकों का सार इस पुस्तक में लिखा है। पढ़ने वाले मुमुक्षुओं को अच्छा लाभ प्राप्त हो सकेगा। इसलिये सभी को यह पुस्तक पढ़कर लाभ प्राप्त करना चाहिये।

पुस्तक संग्रह की प्रति लिपि करने में श्री प्रवर्तक १०८ मुनि पद्मनन्दिजी महाराज, श्री १०८ मुनि कुमार नन्दिजी महाराज, श्री १०८ मुनि कल्पश्रुत नन्दिजी महाराज, श्री १०८ कवीन्द्र नन्दिजी महाराज आदि ने सहयोग किया है। इन सभी को मेरा शुभाशीर्वाद है।

पुस्तक प्रकाशन खर्च में मुनि संघ सेवा समिति आरा ने विशेष आर्थिक सहयोग किया है। इसके लिये उनको मेरा शुभाशीर्वाद है।

—गणधराचार्य कुन्थुसागर



परमपूज्य श्री १०५ गणिनी आर्यिका विदुषीरत्न, सम्यग्ज्ञान शिरोमणि, सिद्धान्त विशारद, जिन धर्म प्रचारिका विजयामती माताजी

का

मंगलमय शुभाशीर्वाद

श्री दिगम्बर जैन कुन्थु विजय ग्रंथमाला समिति के प्रकाशन संयोजक श्री शान्ति कुमार जी गंगवाल के पत्र द्वारा विदित हुआ कि ग्रंथमाला से श्री १०८ उपाध्याय सिद्धान्त चक्रवर्ती कनकन्दिजी महाराज द्वारा लिखित पुस्तक "धर्म ज्ञान एवं विज्ञान" का प्रकाशन हो रहा है। परम हर्ष हुआ।

प्रकाशन संयोजक जी एवं अन्य सभी सहयोगी कर्मठ और जिनशासन वत्सल है, समस्त जिनवाणी के प्रचार

एवं प्रसार में संलग्न रहते हैं। आपका साहित्य आर्ष मार्ग के आधार पर समीचीन प्रामाणिक आचार्यों के प्ररूपण के अनुसार निकलता है। यह पुस्तक भी नव युवको के ज्ञान नेत्र उद्घाटन में सफल होगी।

इसका सभी को अध्ययन करना चाहिये। प्रकाशन संयोजक श्री शान्ति कुमारजी गंगवाल व ग्रंथमाला के सभी सहयोगी कार्यकर्त्ताओं को हमारा पूर्ण आशीर्वाद है। कि वे इसी प्रकार आगम पंथी रहकर सत साहित्य का प्रकाशन करते रहे और जिनवाणी--सरस्वती के प्रचार द्वारा ज्ञानावरणी कर्म का प्रकर्श क्षयोपशम कर क्षय करने में समर्थ बनें।

—ग. आ. १०५ विजयामती



हृदयोद्‌गार

पुस्तक के लेखक

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी उपाध्याय सिद्धान्त चक्रवर्ती

श्री १०८ कनकनन्दिजी महाराज

श्री सच्चिदानन्द स्वरूपाय नमो नमः।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म निम्न श्रेणीय वायरस जीव से लेकर सर्वोच्च श्रेणीय प्रबुद्ध मनुष्य तक प्रत्येक जीव सुख शान्ति के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। यह सुख शान्ति प्राप्ति की आशा सर्वोत्तम है और इस प्रकार आशा वांछनीय भी है। यह आशा भी स्वाभाविक है, क्योंकि प्रत्येक जीव का स्व-स्वभाव ही अनंत सुख शान्तिमय है अर्थात् प्रत्येक जीव अक्षय सुख शान्ति का भण्डार स्वरूप है। जैसे जल का धर्म शीतल है, परन्तु अग्नि संयोग पाकर उष्ण हो जाता है तो भी शीतलता गुण पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता है। केवल उसमें कुछ विकार आता है। पुनः यदि अग्नि का संयोग दूर किया जाता है तो जल स्वयमेव धीरे-धीरे शीतल हो जाता है। अन्य कारण यह है कि शीतल जल को जैसे अग्नि के ऊपर डालने से अग्नि का उपशम हो जाता है उसी प्रकार उष्णता से उष्ण जल को भी अग्नि के ऊपर

डालने से अग्नि उपशम हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि जल का स्वभाव सर्वथा नष्ट नहीं हुआ था। इसी प्रकार राग-द्वेष-मोह-अविद्या-अन्याय-अत्याचार-दुराचार कुशील आदि रूप अग्नि के संयोग सम्बन्ध रूपी कारण से आत्मा में विपरीत परिणमन हुआ है, जिससे अशुद्ध आत्मा में अशान्ति, दुःख, क्लेशादि विकार भाव प्रकट हुये हैं। यदि राग, द्वेषादि रूपी अग्नि रूप संयोग को दूर किया जाये तो धीरे–धीरे आत्मा स्व–स्वरूप अक्षय सुख अवस्था को प्राप्त हो जायेगी। यही शाश्वत सुख शान्ति प्राप्त करने का एक मात्र अद्वितीय सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक प्रयत्न है।

सुख शान्ति प्राप्त करने के लिये यदि जीव भौतिक सामग्रियों का संग्रह करता है, काम भोग विषयों का सेवन करता है, द्वेष-वैर आदि भाव को धारण करता है, तो वह मानो जल को शीतल बनाने के लिये जल के साथ अग्नि का अधिकाधिक संयोग करता है। वह सतत प्रयत्न तो कर रहा है जल को शीतल बनाने के लिये, परन्तु अग्नि के संयोग से जल शीतल नहीं बनता है। उल्टे अधिकाधिक उष्ण होता जाता है उसी प्रकार प्रत्येक जीव सुख-शान्ति प्राप्त करने के लिये तो सतत प्रयत्न करता है परन्तु उसका प्रयत्न जल को शीतल बनाने के लिये अग्नि संयोग के समान विपरीत होने के कारण वह अधिकाधिक दुःखी एवं संतापित होता जाता है।

आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक युग में उपर्युक्त विपरीत सतत प्रयत्न होने के कारण प्रत्येक जीव दिनों-दिन दुःखी होता जा रहा है, जिस प्रकार भौतिक विज्ञान दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है उसी प्रकार आध्यात्मिक दुःखादि दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है। नीति है "आर्त नरा धर्म परा भवन्ति" अर्थात् दुःखी मनुष्य धर्मात्मा होते हैं, दुःखों से छूटने के लिये वे धर्म का अवलम्बन लेते हैं, इस नीति के अनुसार सुवीर चन्द जैन, आरा के एक आध्यात्मिक सुखेच्छु मेरा एक लिखा हुआ लेख 'प्राकृतिक धर्म जैन धर्म' पढ़कर प्रभावित हुए और आधुनिक वातावरण को देखते हुए बढ़ते हुए दुराचारों का प्रतिकार उपाय स्वरूप, व्यापक रूप से वैज्ञानिक पद्धति से लेख लिखने के लिए उन्होंने आग्रह किया। अन्यान्य युवक-युवतियों ने भी प्रोत्साहित किया। लोकोक्ति भी है 'परोपकाराय सतां प्रवृत्तयः' सज्जनों की प्रवृत्ति परोपकार के लिए होती है। अतः स्व–पर, देश–राष्ट्र एवं विश्व कल्याण की पुनीत भावना लेकर लिखी गई इस छोटी–सी पुस्तिका नाम है 'धर्म ज्ञान एवं विज्ञान।'

धर्म अखिल जीव जगत के लिये हितकारी हैं तथा विज्ञान भी प्रत्येक वस्तु के सदुपयोग से वरदान स्वरूप होती है एवं दुरुपयोग से अभिशाप स्वरूप। महात्मा गांधी ने कहा था—(Science is blind without religion and

religion is lame without science). धर्म बिना विज्ञान अन्धा है एवं विज्ञान बिना धर्म पंगु है ।

मनुष्य के जीवन में यदि केवल भौतिक ज्ञान है और धर्म नहीं है तो वह मनुष्य अन्धो के समान है एवं केवल अन्ध–विश्वासात्मक धर्म है। परन्तु विज्ञान नहीं है तो वह पंगु है । अन्धा मनुष्य जीवित रहते, चलते–फिरते हुए भी दृष्टि के अभाव से वस्तु को यथार्थ से देख नहीं पाता है, एवं पंगु देखते हुए भी आगे बढ़ नहीं सकता है । इस प्रकार जो भौतिकवादी प्रगति करते हुये भी धर्म, नैतिकता, विवेक-शील, सदाचार, विनयादि को नहीं देखते हैं वे अन्धे के समान हैं तथा केवल अन्ध विश्वासी लोग धर्म के नाम पर अकर्मण्य, दैववादी मिथ्या परम्परा रूपी रूढ़ि में बन्धकर पंगु के समान आगे प्रगति नहीं करते हैं। जिस प्रकार जीवन रूपी कार के लिए गति रूपी उत्क्रान्ति, प्रगति, जागृति नवीनतादि चाहिये उसी प्रकार प्रकाश रूपी विवेक, विनय, सदाचार, विश्व मैत्री, सहयोग, सह–अस्तित्वादि भी नितान्त–आवश्यक हैं तथा इन्द्रिय, मन–वचन–संयम रूपी ब्रेक भी चाहिये । अभिप्राय यह है कि भौतिक विज्ञान ने मनुष्य को प्रगति रूपी तीव्र गति तो दी, परन्तु विवेकादि रूपी प्रकाश एवं संयम रूपी ब्रेक नहीं दिया है । प्रकाश एवं संयम के बिना मनुष्य रूपी कार–बेकार हो रही है । अभी मनुष्य समाज मछली (मत्स्य) के समान पानी में अबाधित

रूप से तैर रहा है, पक्षी के समान आकाश में उड़ रहा हैं। अन्य ग्रह–उपग्रह के साथ सम्पर्क स्थापित कर रहा है परन्तु अभी तक मनुष्य के समान भू–पृष्ठ पर चलना नही सीखा। मनुष्य के साथ मनुष्य होकर रहना नहीं सीखा। सारी पृथ्वी एक संयुक्त परिवार के समान परस्पर एक दूसरा, एक दूसरे के साथ मिल रहा है परन्तु एक परिवार के व्यक्तियों में प्रेम के अभाव से परिवार खण्ड–खण्ड हो रहा है। जीवन को ब्रेक एवं प्रकाश मिल सकता है तो केवल सम्यक् धर्म से ही। इसीलिये जीवन के पूर्ण विकास के लिए विज्ञान के साथ–साथ धर्म का भी अवलम्बन लेना ही होगा। जिससे जीवन की उन्नति हो उसका सहारा लेना ही चाहिये।

महाकवि कालिदास ने कहा है—

पुराण मित्येव न साधु सर्वं,
न च काव्य नवमिति अवद्यम्।
सन्तः प्रमाण अन्यतरत्भजत्,
मूढ पर प्रत्यय नेय भागी॥

अर्थात्—केवल प्राचीन होने से सब कुछ उत्तम नहीं होता और केवल नवीन होने से सब कुछ हेय नहीं होता। इसी प्रकार प्राचीन सब कुछ हेय नहीं होता तथा नवीन भी सब कुछ उपादेय नहीं होता। जो ज्ञानी विवेकी, प्रज्ञा-

पुरुष गुणवान है वह परीक्षा करके उत्तम (सद्गुण) को ग्रहण करता है एवं अविवेकी अन्ध अनुकरण वाले हैं वे भेड़िया चाल के समान पर अनुकरण करते हैं।
हरिभद्र सूरि ने भी कहा है—

पक्षपातो न में वीरे, न द्वेष कपिलादिषु ।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यं परिग्रहः ।।

महावीर भगवान के प्रति मेरा पक्षपात नहीं है और कपिलादि दार्शनिकों के प्रति मेरा द्वेष नहीं है। किन्तु जिनका वचन युक्ति–युक्त है उनका अनुकरण करना चाहिये ।

विज्ञान में भी कुछ दोष–गुण हैं, अतः परिक्षण–निरीक्षण किये बिना ग्रहण करना प्रबुद्ध (प्रज्ञा धनी) के लिये हितावह नहीं है ।

We cant want blind religion not also only Science but we want a scientific religion

हम मिथ्या धर्म को चाहते तथा केवल भौतिक विज्ञान को भी नहीं चाहते परन्तु एक वैज्ञानिक धर्म को चाहते हैं इसी पुनीत उद्देश्य को मन में लेकर धर्म एवं विज्ञान का यथा शक्ति यथा भक्ति समन्वय एवं समीक्षादि 'सर्व जन हिताय सर्व जन सुखाय' के लिए किया गया है। गुणी जन राजहंस की तरह गुणों को ग्रहण करके दोषों का त्याग

करते हैं। अतः गुणी जन इस पुस्तक से गुण ग्रहण करके दोषों का त्याग कर देंगे यह मेरा पूर्ण विश्वास है।

मैं स्वयं ज्ञान से, अनुभव से तथा चरित्र से बालक हूँ। बालक जैसे—उत्साह से, भावुकता से कुछ काम करता हैं। उसी प्रकार से मैंने प्राकृत गाहा, संस्कृत श्लोक, सहित इस पुस्तक को लिखा है। इसमें त्रुटि नहीं होना ही आश्चर्य होगा। बालक के समान त्रुटि होना स्वाभाविक है। आप सहृदय विज्ञ मुझे अबोध बालक समझकर कृपा दृष्टि से क्षमा करें एवं शुद्धि के लिए एक हिताकांक्षी के समान मार्ग–दर्शन करायेंगे। मार्ग–दर्शकों को मैं अपना हिताकांक्षी मानूंगा। ज्ञान-विज्ञान-धर्म-दर्शन, नीति, नियम की जननी पवित्र विश्व के सिरताज समान भारत भूमि में बिहार एक प्रान्त है। इस प्रान्त का नाम पहिले 'मगध' था। परन्तु अहिंसा के अवतार वर्द्धमान-महावीर भगवान, महात्मा बुद्ध आदि महामानवों के बिहार के कारण यहाँ की भूमि पवित्र हो गयी, तबसे इसका नाम 'बिहार' पड़ा।

इस बिहार में धार्मिक, सांस्कृतिक, सम्पत्ति–विभूति, शिक्षा से सम्पन्न 'आरा' नगरी है। यहाँ जैनों के अग्रवाल प्रायः १५० परिवार हैं। यहाँ का समाज अत्यन्त विनय–शील, देवशास्त्र–गुरु के परमोपासक धर्म, संस्कृति, शिक्षा प्रेमी है। इसका ज्वलन्त उदाहरण यहाँ के गगन चुम्बी विशाल कला पूर्व शिखरयुक्त जिन मन्दिर हैं। और गृह

चैत्यालय लगभग प्रत्येक घर में हैं। जन-संख्या के अनुपात से पूरे भारत में इतने जिन मन्दिर मेरी जानकारी में कहीं पर भी नहीं हैं। यहाँ के बाबू राजर्षि देवकुमार ने जो 'जैन सिद्धान्त भवन' बनाया है, जिसमें अनेक भाषा, धर्म के प्रायः ६०,००० शास्त्र हैं। आरा में तीन जैन धर्मशाला, जैन कॉलेज, जैन उच्च विद्यालय, जैन कन्या पाठशाला आदि अनेक धार्मिक और शैक्षणिक संस्थायें हैं। पण्डिता–माननीया–महिला समाजोद्धारक चन्दाबाई द्वारा स्थापित 'जैन बाला विश्राम' है जो कि केवल जैन समाज का ही नहीं बल्कि पूरे भारत के लिये आदर्श हैं।

वर्तमान में आचार्य संघ का वास्तव में यहाँ के आबाल-वृन्द बनीता में जागृति आयी है। विशेषकर के बालक–बालिका, युवक–युवतियों में अपूर्व जागृति आयी है। सब कोई धर्म में आगे बढ़े, यही मेरी भावना है और शुभाशी–र्वाद हैं।

पुस्तक प्रकाशन खर्च में मुनि संघ सेवा समिति (आरा) के विशेष आर्थिक सहयोग किया है। इसके लिये मुनि संघ सेवा समिति के मन्त्री श्री अजितकुमारजी जैन, समिति के सभी सहयोगी कार्यकर्त्ताओं को मेरा शुभाशीर्वाद है।

श्री दिगम्बर जैन कुन्थु विजय ग्रंथमाला समिति ने अल्पावधि ने कठिन परिश्रम करके इस पुस्तक का प्रकाशन

कार्य पूरा करवाने का कार्य किया है। इसके लिए ग्रंथमाला के प्रकाशन संयोजक श्री शांतिकुमारजी गंगवाल व ग्रंथमाला के सभी सहयोगी कार्यकर्त्ताओं को मेरा शुभाशीर्वाद है। यह ग्रंथमाला भविष्य में भी सत्साहित्यों का प्रकाशन करके देश का नैतिक स्तर उन्नत करने में सहयोग प्रदान करती रहे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः ।
सर्वे सन्तु निरामय ।।
सर्वे भद्राणि पश्यन्ति ।
मा कश्चिद्दुखभाग् भवतु।।

ॐ शांतिः ॐ शांतिः ॐ शांतिः

———

श्री दिगम्बर जैन मुनि–संघ सेवा समिति आरा (बिहार) के मंत्रीजी के प्रस्तुत पुस्तक के बारे में

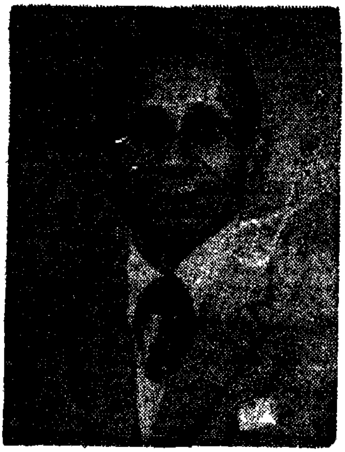
❋ दो शब्द ❋

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थु सागरजी महाराज के विशाल संघ का वर्षायोग करवाने का हम आरा निवासियों को सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्षायोग में आचार्य संघ के सानिध्य में विभिन्न धार्मिक कार्यक्रम होते रहे। जिससे हमें बहुत लाभ मिला है और दिसम्बर १९८८ में पंच कल्याण महोत्सव हो रहा है यह सब परम पूज्य गणधराचार्य कुन्थु सागरजी महाराज के शुभाशीर्वाद से ही सम्भव हो रहा है।

संघ में परम तपस्वी, विद्वान, सिद्धान्त चक्रवर्ती, एलाचार्य मुनि श्री १०८ कनकनन्दिजी महाराज हैं, जिन्होंने लोगों के लाभार्थ धर्म ज्ञान एवं विज्ञान पुस्तक लिखी है जिसमें विज्ञान के माध्यम से धर्म और ज्ञान पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक का प्रकाशन श्री दि. जैन कुन्थु विजय ग्रंथमाला समिति जयपुर (राज.) से १४वें पुष्प

के रूप में प्रकाशन करवाया गया है। मुनि संघ समिति प्रकाशन खर्च में पूर्ण सहयोग तो नहीं कर सकी लेकिन मात्र ७००१/- रु. (सात हजार एक) का सहयोग ग्रंथ-माला समिति को किया है बाकी प्रकाशन खर्च ग्रन्थमाला समिति वहन करेगी इसके लिए हम ग्रंथमाला के प्रकाशन संयोजक श्री शांतिकुमारजी गंगवाल का बहुत बहुत आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने हमको इस कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया और पुस्तक का बहुत ही कम समय में सारा प्रकाशन कार्य पूरा करवाकर पंच-कल्याणक महोत्सव के शुभावसर पर परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थु सागरजी महाराज के कर-कमलों द्वारा विमोचन करवा रहे हैं। मुझे आशा है कि उपाध्याय महाराज द्वारा लिखित इस कृति को पढ़कर सभी लाभान्वित होंगे।

सचिव
अजित कुमार जैन
श्री दिगम्बर जैन मुनि संघ सेवा समिति, आरा



प्रस्तावना

धर्म—द्रव्य मात्र का त्रिकालवर्त्ती अखंड स्वरूप है। वह वस्तु का स्वभाव है। धर्म सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप है। वह संसार के दुःखों से निकलकर मुक्ति का मार्ग बताता एवं प्रत्येक जीव को लोक परलोक दोनों में सच्चे सुख का दाता है।

धर्म के व्यवहार में अनेक रूप हैं, वह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप है। तथा अनेकांत, स्याद्वाद एवं नय रुप है। क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचन, ब्रह्मचर्य दस प्रकार भी धर्म निरुपति किया गया है। धर्म जीव

का बंधु, साक्षी दोनों लोकों में हितकारी और भव-भ्रमण अर्थात् संसार भटकन का नाश करने वाला है। धर्म आत्मा का निधि चैतन्य एवं जीव का स्वभाव तथा आत्मा का कल्याण कारक एवं प्राणि मात्र का सखा और सहयोगी है।

व्यवहार में धर्म—परस्पर से एक दूसरे की सेवा, उपचार नवधाभक्ति, नवदेव पूजन एवं परमेष्ठी की सेवा अर्चना है। धर्म यदि आत्मा है—तो कर्म योग भक्ति योग उसके बाह्य एवं ज्ञान योग उसका अंतरंग प्राण है। धर्म आकाश सा अनंत, सागर सा गहन गंभीर, पवन सा उपयुक्त आजाद पृथ्वी सा अचल और अग्नि सा पवित्र है। अपने स्वरुप में स्थिति एवं पर पदार्थ पर द्रव्यों से निवृत्ति तथा वीतरागता ही धर्म का मूल है।

धर्म—कर्म काण्डों, सम्प्रदायों, पंथों, रुढ़ियों, आडम्बरों में नहीं है, ये तो मात्र दिखावें, आर्वजिक बहकावे और मन—भेद करके झंझट झगड़ों के कारण हैं। धर्म अमृत है। धर्म तरक्की है। धर्म धरणी आकाशसी अनंत सुखदायिनी है।

ज्ञान—"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रं मित्रं विद्यते" धरा पर ज्ञान सा पवित्र अन्य कोई पदार्थ नहीं है। यह वृक्ष स्वरुप

सच्चिदानंद मय ही है। ज्ञान सर्वज्ञ, वीतरागी, हितोपदेशो, सच्चे गुरु, सच्चे देव, सच्चे शास्त्र प्रणीत ही हो सकता है। ज्ञान–दीपक की तरह स्वपर प्रकाशक है पूर्ण ज्ञान–प्रत्यक्ष है–इंद्रियातीत केवल शुद्ध आत्मोपलब्ध, इंद्रियक ज्ञान परोक्ष, अनुमान, आगम, स्मृति रूप है सप्तनयों से उसका व्यवहार में उपदेश देकर बाल बोधाय सुगम, सरल और सामान्य हितकारी बताया है Know The Self अपने आपको जानना ही सच्चा ज्ञान है। स्व को जान लेने पर पर पदार्थों का ज्ञान अपने आप हो जाता है।

ज्ञान अनंत है, "तत्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, अल्प ज्ञान मय आत्मा।" जैसे वाक्यों ने उसका उद्धार किया है। ज्ञान चेतना और ब्रह्म का गूढ़तम रहस्य है।

विज्ञान—अचेतन, जड़ प्रकृति, पौद्गलिक अणु परमाणुओं के मिलन, बिछुड़न, उत्कीरण विकीरण, सम्मिलन, रूक्ष एवं स्निग्ध स्वभाव से बनें, अनंत रूपों की व्याख्या, परीक्षा, अन्वेषण, अनुसंधान करना, उनकी तार्किक संगति बैठाना कार्य कारण की खोज करना और लेबोटेरी में उन पर खोज बीन करके प्रकृति

रहस्यों पर प्रकाश डालना, विज्ञान का कार्य है। इसी रूप में आजकल समाज में विज्ञान का अर्थ-भाव और स्वरूप लिया जाता है, अवनि से अम्बर तक, जल से थल तक, ज्वालामुखी एवं सागर की गहराइयों से अंतरिक्ष के गृहनक्षत्रों एवं सूर्य चंद्र मंगललोक तथा विज्ञान के स्पूतनिक की ओर कदम बढ़े हैं। कृतियों से लेकर मानव मानवी तक अन्य लोकों में बिहार कर आ गया है।

विज्ञान अज्ञान का कुहरा, अंधकार हटाकर ज्ञान का दीपक और सत्य का सूरज चमकता है, वह रहस्य और पर्दों को हटाता है, रूढ़ियों से बचाता, अंधविश्वासों से रक्षा करता है, वह जीवित, प्रत्यक्ष व्यवहारिक सत्य के सम्मुख ही शीश झुकाता है।

धर्म — हृदय है, श्रद्धा है, भावना है, सम्यक्त्व है। ज्ञान—मस्तिष्क है, अनेकांत है, स्याद्वाद है, सम्यग्ज्ञान है।

विज्ञान—व्यवहार–प्रयोग–क्रिया–श्रद्धा स्वर्ण रूप चारित्र है–सम्यक् चारित्र तीनों की त्रिकुटि, त्रिवेणी और एकात्मकता ही बिश्व शांति सुख एवं मानव मैत्री का कारण बन सकती है।

धर्म—ज्ञान ही चैतन्य जीव रूप है। विज्ञान मय चेतना और ज्ञान, ब्रह्म स्वरूप है। यदि धर्म मय ज्ञान उत्पन्न हो जावे तो यह शुद्ध आत्मा हो विज्ञान मय तुरीय चैतन्य अवस्था शुद्ध निरंजन, निर्विकार अनंत अष्ट मूल गुणी सिद्ध परमेष्ठी कहलायगी ब्रह्म के सुषुप्ति, स्वप्न जागृति एवं तुरीय रूप जो बतलाये गये हैं वे जागृति–जीव अवस्था, तुरीया अखंड सच्चिदानंद सिद्ध ब्रह्म अवस्था ही है। इस प्रकार "धर्म–ज्ञान–विज्ञान" जड़–चेतन–प्रकतिपुरुष जीव–ईश्वर, एवं ब्रह्म और परमात्मा के शुद्ध स्वरूपों का विवेचन करने वाली कृति है।

इसका स्वाध्याय, मनन, चिंतन, अध्ययन, अध्यापन और चर्चा, जिज्ञासुओं के लिये मुक्ति का पथ प्रशस्त करती है, एवं आत्मा से परमात्मा, पुरुष से पुरुषोत्तम नर से नारायण बनाने का संदेश देती है।

उपाध्याय श्री १०८ कनकनन्दि महाराज की यह कृति वास्तव में अनेक शंकाओं, भ्रमों और कुतर्कों के विध्वंस ही नहीं करती, अपितु जिज्ञासुओं और आत्म मुमुक्षुओं के लिए ज्ञान का कल्प वृक्ष, शास्त्र

की कामधेनु और अमृत का कलश लेकर आयी है।

महाराज श्री ने वेद, आगम, निगम, जैन, जैनेतर, पूर्वी एवं पश्चिमी अनेक ग्रंथों के आलोड़न-विलोड़न के पश्चात यह प्रसूत की है, मेरे विनम्र प्रणाम और साधुवाद ऐसी कृति एवं प्रकाशन के लिए।

प्रो. अक्षय कुमार जैन
सिद्ध ज्योतिष संस्थान
५१/२ रावजी बाजार, इन्दौर





प्रकाशकीय

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि आरा (बिहार) में आयोजित पंचकल्याणक महोत्सव के शुभावसर पर ग्रंथमाला समिति द्वारा चौदहवें पुष्प के रूप मे, धर्म ज्ञान एवं विज्ञान पुस्तक का प्रकाशन करवाकर तेरहवे पुस्तक के रूप में प्रकाशित श्री गोम्मट प्रश्नोत्तर चितामणि ग्रथ के साथविमोचन करवा रहे है ।

धर्म ज्ञान एव विज्ञान पुस्तक परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य स्याद्वाद केसरी श्रमण वात्सल्य रत्नाकर कुन्थुसागरजी महाराज के परम शिष्य श्री १०८ सिद्धान्त चक्रवर्ती उपाध्याय कनकनन्दिजी महाराज ने लिखी है । उपाध्याय महाराज परम तपस्वी शांतमूर्ति होने के साथ-साथ आप बहुत ही उच्च कोटी के विद्वान है । गणित, भूगोल, सामाजिक ज्ञान राजनैतिक धार्मिक आध्यात्मिक प्राय: सभी विषयों में आपका ज्ञान गहराई तक पहुच चुका

है । आत्मानुकूल सिंहवृत्ति डंके की चोट बोलने वाले, सिंह गर्जना, के साथ वीर रस में प्रवचन करने वाले विश्व की अनुपम सिद्धि हैं ।

उपाध्याय महाराज की त्याग तपस्या एवं विद्वत्ता को देखते हुए अभी हाल ही में दिनांक २०-१०-८८ को विजया दशमी के रोज परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य कुन्थु सागर जी महाराज ने आपको एलाचार्य के पद से विभूषित कर दिया और गणधराचार्य महाराज के बाद संघ के आचार्य भी आप ही बनेंगे । इस घोषणा में उपाध्याय महाराज की विद्वता, त्याग, तपस्या व संघ संचालन की योग्यता सभी को दृष्टिगोचर हो गयी है । प्रस्तुत पुस्तक धर्म ज्ञान एवं विज्ञान आपकी अनुपम कृति है । जिसे आपने बहुत ही कठिन परिश्रम करके लिखा है । पुस्तक में अच्छा विवेचन किया गया है । जिसे पढ़कर अनेकों भव्य जीव लाभ प्राप्त कर सकेंगे ।

आदरणीय प्रो. अक्षय कुमार जी जैन इन्दौर का भी आभार प्रकट करता हूँ कि पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की कृपा की है ।

पुस्तक प्रकाशन खर्चों में मुनि संघ सेवा समिति आरा ने सात हजार एक रुपयों का सहयोग प्रदान किया है । जिसके लिए ग्रंथमाला समिति उन्हें धन्यवाद देती है, बाकी खर्च ग्रंथमाला समिति ने वहन किया है । ग्रंथमाला के

प्रकाशन कार्यों में ग्रंथमाला के सभी सहयोगी कार्यकर्ताओं का बहुत ही आभारी हूँ क्योंकि सभी के सहयोग से यह कार्य हो सका है। पुस्तक का प्रकाशन कार्यों को सावधानी से देखा गया है फिर भी कोई त्रुटि रही हो तो साधुजन, विद्वान पाठकगण क्षमा करें।

जैन मित्र, जैन गजट, अहिंसा, करुणा दीप, पार्श्व ज्योति, पुष्पदंत धारा आदि पत्रों के संपादकों को उनके द्वारा ग्रंथमाला के लिए दिए गये सहयोग के लिए बहुत आभारी है और उनके सहयोग के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ। आशा है आप सभी का सहयोग ग्रंथमाला के प्रकाशनों के प्रचार-प्रसार में हमेशा प्राप्त होता रहेगा।

अंत में परम पूज्य श्री १०८ गणधराचार्य स्याद्वाद केसरी, वात्सल्य रत्नाकर श्रमण रत्न कुन्थु सागर जी महाराज के कर कमलों में विमोचन करने हेतु पुस्तक भेंट कर आज मैं अतीव प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं और गणधराचार्य महाराज से प्रार्थना करता हूँ कि वो इसका विमोचन करने की कृपा कर हम सभी को लाभान्वित करें।

आशीर्वाद की भावना के साथ
संगीताचार्य
शान्तिकुमार गंगवाल
(बी. कॉम.)

महान् वैज्ञानिक नेता कनकनन्दी

का

व्यक्तित्व

●

परम पूज्य प्रातः स्मरणीय बाल ब्रह्मचारी, वात्सल्य रत्नाकर, श्रमण रत्न, स्याद्वाद केसरी, गणधराचार्य कुंथुसागर मुनि महाराज जी के परम प्रियाग्र शिष्य, सिद्धान्त चक्रवर्ती उपाध्याय रत्न कनकनन्दी मुनि महाराज जिनके सतत् ज्ञानाभ्यास से आज उनका ज्ञान एक महान् वैज्ञानिक तत्त्ववेत्ता से ही नहीं, अपितु आध्यात्मिक तत्त्ववेत्ता से भी कई गुणा अधिक है।

इन्होंने अपनी प्रज्ञा से अध्ययन और अध्यापन की जो शैली अपनाई वह अद्भुत और अनुपम है। जब उपाध्याय श्री शिक्षण–प्रशिक्षण देते हैं, उस समय वैज्ञानिक दृष्टि-

कोरा एवं धार्मिक दृष्टिकोरा से समन्वयात्मक शैली से समझाते हैं।

इनका अध्ययन गरिात, विज्ञान, भूगोल, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक प्राय: सभी विषयों में गहराई से पहूंच चुका है।

उपाध्याय श्री जैन-सिद्धान्त के विषय में ही नहीं अन्यान्य किसी भी विषय से अछूते नहीं हैं।

जो भी विद्वान्, सन्त, कवि, कलाकार, सज्ञानी, सम्यक्ज्ञानी, विज्ञानी, दार्शनिक, सिद्धांतज्ञ चाहे, तो संघ में आगमन कर शंका–समाधान कर सकते हैं।

जिस शंका का समाधान उपाध्याय श्री के पास नहीं होगा, उस शंका का समाधान मुश्किल से ही अन्यत्र होने की संभावना है।

आत्मानुकूल सिंहवृत्ति डंके की चोट पर बोलने वाले, सिंह-गर्जना के साथ वीर रस में प्रवचन करने में विश्व की अनुपम-निधि उपाध्याय श्री हैं।

वे दिगम्बर जैन समाज के ही नहीं, समस्त नागरिक एवं समाज के कीर्ति स्तम्भ हैं। जिन्होंने ऐसे उपाध्याय रत्न का दर्शन कर लिया वे बड़े भाग्यवान हैं।

उपाध्याय श्री बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि एवं एक अध्ययनशील विद्यार्थी थे। अभी उन्होंने अनेक भाषाओं में प्रभुत्व पा लिया है, जैसे संस्कृत, प्राकृत, आंग्ल, हिन्दी, उड़िया, बंगला, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं में प्रवचन एवं शंका समाधान कर सकते हैं।

वे कहते हैं जो आरम्भ एवं समस्त परिग्रह से रहित हो, वही उपदेशक होना चाहिए।

जो निर्दोष होगा, वही उपदेश देने के लायक है; जो स्वयं दोषी है, वह दूसरों के दोषों को कैसे दूर कर सकता है?

आज घर-घर, नगर-नगर में वेतनभोगी पंडित उपलब्ध हैं, एक दिन भी जिनका तत्व चर्चा से, वीतराग चर्चा से खाली नहीं जाता, परन्तु उनमें न संयम है और न चारित्र। स्वयं गृहस्थी, रागी बने हुए हैं, वे जनता को वैराग्य का उपदेश कैसे देंगे तथा उनके द्वारा धर्म-प्रभावना कैसे होगी?

निष्परिग्रही व्यक्ति धर्म का उपदेश देगा तो उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा, जिसके बाल-बच्चे हैं, जो भोगी है, रात-दिन धन-संग्रह की इच्छा रखता हैं, वह उपदेशक कैसे हो सकता हैं?

उपाध्याय श्री आरम्भ एवं परिग्रह से बहुत दूर हैं, इसलिए मोक्ष-मार्ग के समीप जा रहे हैं। उनकी त्याग, तपस्या, ध्यान अनुकरणीय हैं।

उपाध्याय श्री कनकनंदी जी 'श्रमण संस्कृति' के ही नहीं, अहिंसा और सत्य की जीवन्त प्रतिमा हैं।

अज्ञान-अन्धकार को दूर भगाते हुए ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न महान् पवित्रात्मा हैं।

चारित्र की साक्षात् मूर्त्ति के दर्शन कीजिए और अपने जीवन में चारित्र रूपी नदी में स्नान करके कर्म मल को धोकर आत्मा को परम पावन कीजिए।

नागपुर नगर में ये अभूतपूर्व साधनामयी वैचारिक क्रांति नवयुवकों में लाएं, वह अनेकान्त धर्म का डंका बजाने वाली एवं एकान्त रूपी भूत मार भगाने वाली उपलब्धि है, वह प्रशंसनीय है।

निष्परिग्रही निर्मम का साक्षात् उदाहरण मैंने देखा जबलपुर में थे। वहां एक जज साहब इनके लिए एक बहुत बढ़िया घड़ी लेकर आये और कहा आप इसे रखें। उपाध्याय श्री ने कहा, "मेरा न सामायिक होगा, न ध्यान इसी की सुरक्षा में हमारा सारा समय चला जाएगा।

परिग्रह दुःख का कारण है। ये घड़ी बिगड़ गई तो सुधरवाने की चिन्ता, कोई इसे न ले जावे उसकी सुरक्षा की चिन्ता, इससे उचित यह होगा कि इस बला को आप वापस ले जाए।"

इनके पास संयमोपकरण, ज्ञानोपकरण, शौचोपकरण के अलावा तिलतुष मात्र भी परिग्रह के दर्शन नहीं होंगे।

इनके तत्त्व–चिन्तन, दार्शनिक–विचारों आध्यात्मिक जगत को जो सूक्ष्म तलस्पर्शी व्यावहारिक भावस्थली प्रदान की है, वह वास्तव में समाज, देश एवं राष्ट्र की जनता के लिए अत्यन्त उपादेय एवं आचरणीय है।

इन्होंने अपनी प्रज्ञा से सूक्ष्मदृष्टि के द्वारा सत्य तथ्यों का जो साक्षात्कार किया है, वह इनके लिखे हुए अनेक विद्वत्ता पूर्ण लेख 'ज्वलन्त शंकाओं का शीतल समाधान' नामक पुस्तक में सन्निहित है।

जैन धर्म के प्राण अनेकान्त सिद्धान्त को एवं अपने मौलिक तथा स्वतन्त्र चिन्तन एवं अनुभव ज्ञान की गंगा से इन्होंने दार्शनिक जगत में क्रांति की, जो इसमें धारा प्रवाहित की है, उससे तटस्थ चिन्तकों एवं एकान्तवादियों का दिव्य पथ प्रशस्त हुआ है।

उपाध्याय श्री दिगम्बर जैन समाज के वह कीर्त्ति स्तम्भ हैं। जिसकी सम्यक्दृष्टि युगों-युगों तक मार्ग दीपक बनकर धर्मात्माओं को सन्मार्ग बताता रहेगा। ज्ञानामृत रूपी शीतल किरणों से जन-जन को रत्नत्रय से लाभान्वित करता रहेगा।

इनका सम्यग्ज्ञान किसी भी पंथ विशेष एवं सम्प्रदाय-विशेष में सीमित नहीं है। निष्पक्षपातीना इनके प्रारंभिक जीवन का सार है।

"किसी भी पंथव्यामोह में पड़कर दुर्गति में नहीं जाना, एकान्तवादी नहीं बनना, अनेकान्तवादी बनो, स्याद्वादी बनो" यह उनकी अमृतवाणी का सार है।

ज्ञान प्राप्ति के बाधक विकारी भावना, राग द्वेष परिणति, पक्षपात, गरिष्ठ भोजन, चित्त की चंचलता, अधिक बोलना इत्यादि हैं।

उपाध्याय श्री समुद्र के समान गंभीर, पृथ्वी के समान क्षमा की साक्षात् मूर्त्ति, विवेकानन्द जैसे तीक्ष्ण बुद्धिमान् अनेक भाषाओं में नाना देश के नाना श्रद्धालुओं को धर्मामृत पान कराने में उदार दृष्टि रखने वाले हैं।

कर्नाटक में इनकी बहुत ख्याति है। इनको आदर

ग्रौर सम्मान की दृष्टि से देखते हैं ।

कर्नाटकी महानुभाव बोलते हैं कि ऐसे साधु-सन्त का हम कभी दर्शन नहीं किया।

कर्नाटक में उपाध्याय श्री गोम्मट स्वामी जैसे प्रसिद्ध हैं, जन-जन के प्रिय हैं ग्रौर उनको भी वह प्रदेश विहार के लिए ग्रच्छा लगा है ।

वहाँ शांतस्वभावी श्रावक-श्राविका देवपूजा एवं गुरु पूजा (उपास्ति) में निष्णात हैं। उनमें उदारता, भक्ति भाव, श्रद्धा ग्रटूट है । मुनियों को भगवान समान मानते हैं, वे कहते हैं कि मुनि चलते-फिरते सिद्ध हैं ।

महतो महीयान मेरे शिक्षा गुरु देव ! हम महासागर को पार कर सकते हैं परन्तु ग्रापका ग्रन्तरंग तलस्पर्श तत्त्वज्ञान हमारी शक्ति के बाहर है ।

उसे भौतिक वस्तु के द्वारा नांपा तोला नहीं जा सकता है, नांप भी नहीं सकते क्योंकि ग्राप ग्राध्यात्मिक ज्ञान ग्रात्मा में ग्रनन्त ग्रौर ग्रानन्द का परिपूर्ण सागर है ।

इनका समता भाव इनकी ग्रात्मा में कूट-कूट कर भरा हुग्रा है ग्रर्थात् उपाध्याय श्री समता भाव के धनी हैं ।

सूर्य पूर्व से उगने वाला पश्चिम में उग जाय तो भी इनका अनेकान्त रूपी सर्वोच्च न्याय निर्णय बदल नहीं सकता है, यह इनकी जैन धर्म के ऊपर अटूट श्रद्धा का प्रतीक है।

देहे निर्ममता आत्म चिंतन में तल्लीनता अर्थात् मोक्ष सुख की ओर इनके कदम बढ़ते जा रहें हैं, यह सूचित करता है ।

कल्याणेच्छुक यदि आत्मा को परमात्मा बनाना चाहता है, तो अवश्य उपाध्याय का सानिध्य प्राप्त करें और इस मानव पर्याय को सार्थक बनाये ।

उपाध्याय श्री प्रत्येक क्षण पुस्तकों का अध्ययन करते रहते हैं, जिस समय अध्ययन नहीं करते हैं, उस समय चिन्तन में लीन रहते हैं तथा अधिकतर मौन रहते हैं। उपाध्याय श्री छोटे-छोटे बच्चों से विशेष प्रीति करते हैं, क्योंकि जिस प्रकार बच्चों का हृदय सरल रहता है, उसी प्रकार प्रत्येक जीव में जब तक सरलता नहीं आयेगी, तब तक आत्म कल्याण होना दुर्लभ हैं, तथा उपाध्याय श्री का मत है कि जिस प्रकार बेला (लता) को जिस ओर झुकाया जाय उस मार्ग में झुक जाती है और उस ओर बढ़ जाती है।

उसी प्रकार छोटे बच्चों को जिस ओर झुकाया जाय उसी, ओर झुक जाते हैं, इसलिये वे बच्चों से विशेष प्रेम कर, उन्हें आकर्षित करते हैं और उन्हें धर्म उपदेश देकर धर्म में लाते हैं।

उपाध्याय श्री का विचार है कि जिस प्रकार गीले घड़े में, जिस प्रकार चित्र निकालना चाहें उस प्रकार निकल सकते हैं, किन्तु जो घड़ा पक गया है, उस पर कुछ नहीं हो सकता इसलिए छोटे-छोटे बच्चे, नवयुवकों को उपदेश देने में विशेष रूचि लेते हैं।

उपाध्याय, श्री में इतना ज्ञान होने पर भी अभिमान, अहंकार की थोड़ी भी झलक नहीं है, वे आडम्बर को विशेष पसन्द नहीं करते हैं। वे यथार्थ रूप से आत्म-कल्याण में लगे हुए हैं, पाँचों इन्द्रियों के निग्रह तथा तीन गुप्तियों का पालन करते हैं।

उपाध्याय श्री इतने वैराग्य भावना सहित रहते हैं, इसका ज्ञान हमें तब होता है, जब वह अपने वचनों के द्वारा तथा वीर रस से सहित प्रवचन करते हैं, तब ज्ञात होता है।

उपाध्याय श्री की यह विचार धारा बनी रहती है कि

जिस प्रकार महान् पुरुषों का हम गुणगान करते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति भी महान् पुरुष बने, तथा वे स्वयं भी इस प्रकार के प्रयत्न में लगे रहते हैं कि महान् पुरुषों की कोटि में हमारा नाम भी आये। इस प्रकार का वे कर्त्तव्य करते हैं। वे प्रवचन कर जनता के कानों को विशेष महत्व नहीं देते हैं। उनका बिचार है कि आचरण में लाओ। इसलिए वे स्वयं भी आचरण करते हैं और दूसरों से भी आचरण कराते हैं।

उपाध्याय श्री जैसा गुण ग्रहणकर्ता, विनय सम्पन्नता, व्यवहार कुशलता, अध्ययनशीलता आदि गुण हमारे आत्मा में भी प्रगट हो इसी सद्भावना के साथ-साथ उपाध्याय श्री दीर्घायु हों ऐसी शुभकामना करता हुआ, अनन्तबार नमोस्तु स्वीकार होवें, मुनि श्री कुमुदनंदी महाराज का।

ॐ शांति शांति शांति

लेखक :

युवक सम्राट् मुनि श्री कुमुदनन्दी महाराज जी

———

श्री वीतरागाय नमः

स्वाभाविक धर्म : जैन धर्म

[प्रथम परिच्छेद]

इष्ट प्रार्थना

मंगलमय नमोकार मंत्र—

णमो अरिहंताणम्,
णमो सिद्धाणम्,
णमो आइरियाणम्,
णमो उवज्झायाणम्,
णमो लोए सव्व साहूणम् ।।

अर्थ—णमो अरिहंताणम्—जिसने क्रोध-मान-माया-लोभ मोहादि अंतरंग शत्रुओं को जीता है एवं अनंत-दर्शन, अनंत-ज्ञान, अनंत-सुख, अनंत-वीर्यादि गुणों को प्राप्त किये हैं, अंतरंग-बहिरंग लक्ष्मी से युक्त है एवं सब जीवों के कल्याण के लिए निरपेक्ष भाव से आत्म कल्याण का उपदेश

देते हैं, उनको अरहंत कहते हैं। सम्पूर्ण विश्व में स्थित समस्त अरिहन्त परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो। अरिहंत परमेष्ठी जीवन-मुक्त शरीरधारी परमात्मा होते हैं।

णमो सिद्धाणम्—जीवन-मुक्त परमात्मा जब शेष संस्कारों से अथवा कर्मों एवं शरीर से भी मुक्त होकर सिद्ध, बुद्ध, नित्य, निरंजन, निर्विकार स्वरूप को प्राप्त करते हैं, तब उनको सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं; वे सिद्ध परमेष्ठी एक ही समय में लोकाकाश के शिखर भाग में स्थित सिद्ध शिला में जाकर विराजमान हो जाते हैं। संसार परिभ्रमण के कारणभूत समस्त संस्कार अर्थात् कर्मों को सम्पूर्ण रूप से नष्ट करने के कारण सिद्ध परमेष्ठी पुनः संसार में जन्म नहीं लेते हैं। वहां अनन्तकाल तक अनन्त सुख-शांति का अनुभव करते हुए विराजमान रहते हैं। इसी प्रकार के सम्पूर्ण सिद्धों को मेरा नमस्कार हो।

णमो आइरियाणम्—जो महामानव अंतरंग-बहिरंग परिग्रहों को त्याग करके दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, वीर्याचार और तपाचार का स्वयं आचरण करते हैं एवं आत्म साधक–भव्य मुमुक्षु शिष्यों (अनुयायियों) से आचरण कराते हैं, उनको आचार्य परमेष्ठी कहते हैं। इसी प्रकार के विश्व में स्थित सर्व आचार्य परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

णमो उवज्झायाणम्—जो रत्नत्रय से अलंकृत हैं, समस्त ज्ञान-विज्ञान में पारंगत हैं, आत्म विशारद हैं, स्वमत-परमत के ज्ञाता हैं एवं स्वयं अध्ययन करते हैं तथा शिष्य वर्ग को अध्यापन कराते हैं, उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। अतः विश्व में स्थित संपूर्ण उपाध्याय परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

णमो लोए सव्व साहूणम्—जो बालकवत यथाजात रूप को धारण करके सतत् आत्म साधन में रत रहते हैं और जो शत्रु-मित्र, सुख दुःख, लाभ-अलाभ, निंदा-प्रशंसा, जन्म-मरण में समता भाव रखते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं। विश्व में स्थित सर्व साधु परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

नमस्कार मंत्र महात्म्य—

एसो पंच णमोयारो सव्व पाप प्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढ़मं होइ मंगलम्॥

अर्थ—यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है और सब मंगल में पहला मंगल है।

विघ्नौघा प्रलयं यान्ति शकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

जिनेन्द्र वीतराग सर्वज्ञ भगवान के स्मरण स्तवन मात्र से विघ्न, कष्ट, संकटों के समूह विनाश हो जाते हैं, शाकिनी, डाकिनी, भूत प्रेत, व्यन्तर, सर्प हिंसक पशु आदि दूर हो जाते हैं। विष निर्विष हो जाता है।

अत. सुख, शान्ति, अभ्युदय, मोक्षादिको चाहने वाले भव्य जीवों को णमोकार महामंत्र का, स्मरण मनन, ध्यान चिन्तन; श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा एवं शुद्ध भाव से सतत, खाते, पीते, उठते, बैठते, चलते, फिरते सर्व कार्य के प्रारम्भ में करना चाहिये। जिस णमोकार मंत्र रूपी मूल्य से मोक्ष रूपी वैभव मिल सकता है, उससे सांसारिक वैभव मिले तो क्या बड़ी बात है? वह तो आनुषंगिक फल है, जैसे कृषक को धान्य की खेती से धान्य के साथ आनुषंगिक पुआल स्वयं मिलता ही है।

मंगल दण्डक—

चत्तारि मंगलम्
अरिहन्त मंगलम्
सिद्ध मंगलम्
साहू मंगलम्
केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलम्।

अर्थ—चत्तारि मंगलम्—विश्व (लोक) में चार प्रकार के मंगल होते है।

अरिहन्त मंगलम्—विश्व में वीतराग, सर्वज्ञ, अरिहन्त भगवान मंगलमय हैं।

सिद्ध मंगलम्—विश्व में नित्य, निरंजन, शुद्ध-बुद्ध सिद्ध भगवान मंगलमय हैं।

साहू मंगलम्—विश्व में साधु महात्मा (आचार्य-उपाध्याय-साधु) मंगलमय हैं।

केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलम्—वीतराग, सर्वज्ञ, केवली भगवान द्वारा प्रतिपादित अहिंसा मय वीतराग विश्वधर्म मंगलमय है।

उत्तम दण्डक—

चत्तारि लोगुत्तमा
अरिहंत लोगुत्तमा
सिद्ध लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा
केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि लोगुत्तमा—विश्व में चार तत्त्व उत्तम स्वरूप हैं।

अरिहंत लोगुत्तमा—विश्व में वितराग, सर्वज्ञ अरिहंत भगवान उत्तम स्वरूप हैं।

सिद्ध लोगुतमा—विश्व में नित्य, निरंजन, शुद्ध-बुद्ध सिद्ध भगवान उत्तम स्वरूप हैं।

साहू लोगुत्तमा—विश्व में साधु महात्मा (आचार्य-उपाध्याय-साधु) उत्तम स्वरूप हैं।

केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा—वीतराग-सर्वज्ञ केवली भगवान द्वारा प्रतिपादित अहिंसामय विश्वधर्म उत्तम स्वरूप हैं।

शरण दण्डक—

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि
अरिहंते सरणं पव्वज्जामि
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
साहू सरणं पव्वज्जामि
केयली पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—मैं लोक में स्थित चार मंगलमय, उत्तममय, शरणभूत चार तत्त्वों की शरण में जाता हूँ।

अरिहंते सरणं पव्वज्जामि—मैं वीतराग, सर्वज्ञ अरि-

हन्त भगवान की शरण में जाता हूँ, अर्थात् उनका आश्रय-अवलम्बन ग्रहण करता हूँ।

सिद्धे सरणं पव्वज्जामि—मैं सिद्ध बुद्ध-नित्य-निरंजन सिद्ध भगवान की शरण में जाता हूँ।

साहू सरणं पव्वज्जामि - मैं साधु (आचार्य-उपाध्याय-साधु) परमेष्ठी की शरण में जाता हूँ।

केवली पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि—मैं केवली भगवान द्वारा प्रतिपादित अहिंसामय वीतराग धर्म की शरण में जाता हूँ।

भावार्थ—इस नमस्कार मंत्र में कोई व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया है, परन्तु विशेष आध्यात्मिक गुण सम्पन्न महामानवों को नमस्कार किया गया है। मनुष्य को महान् बनाने के लिये गुणपूजक बनना अनिवार्य है। मनुष्य गुणपूजक होने के कारण गुणीजनों का भी पूजक है। "वंदे तद्गुण लब्धये" अर्थात् उन आध्यात्मिक विभूतियों के आध्यात्मिक गुणों को प्राप्त करने के लिये मैं वंदना करता हूँ। जब गुणग्राही मनुष्य निरपेक्ष, निस्वार्थ, सरल, सहज भाव से महापुरुषों का गुणगान करता है अर्थात् उनको आदर्श मानकर चलता है, तब एक न एक दिन वह भी उसीप्रकार आदर्श बन जाता है। इस

पवित्र उदात्त भावना से मानने में एक आस्था-विश्वास-श्रद्धा उत्पन्न होती है, जिससे उसको प्रतिकूल परिस्थिति रूपी घने अंधाकार में भी आशारूपी ज्योति के दर्शन होते हैं ।

जो मंगल स्वरूप है, वही उत्तम स्वरूप है, वही शरण भूत है । केवली द्वारा प्रतिपादित अहिंसामय धर्म, मंगलमय है, उत्तम स्वरूप है, एवं शरणभूत है इसलिये मनुष्यों को मंगलमय, उत्तममय एवं स्वतंत्र बनने के लिये उपरोक्त मंगलादियों का आश्रय लेना श्रेयस्कर है ।

(ईश्वर स्तवनम्)

सत्यं शिवम् सुन्दरम् चिदानन्द मंगलम्
सर्व कर्म रहितम् सर्व गुणः मण्डितम्
परिभ्रमः रहितम् लोकाग्रे संस्थितम्
सदास्थिरःनिष्कम्पं व्योद्गादः सहितम्
सिद्धः शुद्धः ज्ञायकः बुद्धः विष्णुः महेशः
पुरूः हः शंकराः स्तुत्यः पूज्यः श्रीधरः
एकानेकाः ईश्वरः सूक्ष्म स्थूलः व्यापकः
आदि अन्त रहितम् आत्म मध्ये संस्थितम्
देह मनः रहितम् ज्ञान सुखं सहितम्
राग द्वेष रहितम् शम शान्ति शायितम्
स्वच्छं सौम्यःगम्भीरम् आत्मभावा स्वरूपम्।।

———

नव देवता स्तवन

१. अरिहंत वन्दना—

धर्म चक्रधरः जिनं ज्ञानार्णवः चतुष्टयम् ।
चत्वार वदनं ध्यायेत् सर्व मोहोपशान्तये ।।

अर्थ—धर्मचक्र को धारण करने वाले अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत ज्ञान, अनंत वीर्य रूपी चतुष्टय के धारक एवं समवशरण में स्थित चारों दिक् के श्रोताओं को अपने-अपने दिक् में मुख दिखने के कारण जो चारमुखधारी है। इसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान के चरण को मोह शांति के लिये ध्यान करता हूँ।

२. सिद्ध वन्दना—

ज्ञानाम्बर धरः सिद्धं वर्णाहितं गुणाष्टयम् ।
प्रणष्ट कर्माय स्मरेत् सर्व कर्म प्रणाशये ।।

अर्थ— जिसने सम्पूर्ण कर्म को नष्ट करके आध्यात्मिक अष्ट गुण प्राप्त किये हैं, शरीर रहित होने के कारण जो वर्णादि से रहित हैं अर्थात् अमूर्तिक हैं एवं ज्ञान रूपी वस्त्र को धारण करने वाले सिद्ध भगवान को मैं सर्व कर्म नष्ट करने के लिये ध्यान करता हूँ।

३. आचार्य वन्दना—

पञ्चाचारपरायणः सुविमलाश्चारित्रसंद्योतका ।
अर्हद्रूपधराश्च निस्पृहपराः कामादिदोषोज्झिता ।।

पञ्चाचारों का पालन करने वाले, विमल ऐसे चारित्र के प्रतिबिम्ब स्वरूप, अरिहंत के रूप धारक, निस्पृह, दोष रहित आचार्य को नस्कार करता हूँ ।

४. उपाध्याय वन्दना—

स्वात्मज्ञान विवृद्धये गतमलाः येऽध्यापयन्ती श्वराः ।
निर्द्वन्द वरपाठकाः सुविमलाः कुर्वन्तु ते मंगलम् ।।

निर्मल, यतीश्वर, निर्द्वन्द, श्रेष्ठ विमल ज्ञानधारी उपाध्याय आत्मज्ञान की वृद्धि के लिए पढ़ाते हैं, वे हमारा मंगल करें।

५. साधु वंदना—

शुद्धाचाररता निजात्मरसिका ब्रह्म स्वरूपात्मका ।
देवेन्द्रै रपि पूजिताः सुमुनयः कुर्वन्तु ते मंगलम् ।।

शुद्धाचाररत, निजात्मरसिक, स्वस्वरूपमय देवेन्द्रों द्वारा पूजित साधु–हमारा मंगल करें ।

६. जिनागम वंदना—

स्याद्वादाङ्कधरं त्रिलोकमहितं देवैः संस्तुतम् ।
संदेहादिविरोध भावरहितं सर्वार्थसंदेशकम् ।।

स्याद्वाद का धारक त्रिलोक महिमा मंडित देवों से स्तुत्य संदेह विरोधक, सर्वार्थ उपदेशक आगम को नमस्कार हो ।

७. धर्म वन्दना—

अहिंसा धर्मरुपाय अनेकान्त प्रकाशने।
रत्नत्रयगुणांगय नमो दुःख विनाशाय ।।

अर्थ—अहिंसारुपी धर्मस्वरुप अनेकान्त का प्रकाशन करने वाले रत्नत्रय से युक्त धर्म को, दुःख विनाश के लिये नमस्कार करता हूँ।

८. चैत्य वन्दना—

प्रशान्तरुपरुपाय कृतकृत्य स्वरुपाय।
परमात्मनिर्देशाय नमो चैत्य जिनालये ।।

अर्थ—प्रशान्तरुप के प्रतिकृति स्वरुप, कृतकृत्य परमात्मा के प्रतिकृति स्वरुप भगवान की प्रतिमा को, जो जिनालय में स्थित है, उसको मैं नमस्कार करता हूँ।

९. चैत्यालय वन्दना—

समवशरण स्वरुपाय धर्मायतन बीजाय।
नमो जिन चैत्यालय चैतन्यरुपरुप प्राप्तये ।।

अर्थ—जो समवशरण के विभूतियों को धारण करने वाला, धर्मायतन के बीजस्वरुप जिनेन्द्र मंदिर को चैतन्य रुप प्राप्त करने के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

स्तवन फल—

नवलब्धि प्राप्ताय नवदेव स्तवोऽयम् ।
सच्चिदानंद सिद्धये बाह्याभ्यन्तर धर्मोऽयम् ।।

अर्थ—अंतरंग क्षायिक नवलब्धि प्राप्त करने के लिये यह नव देवता स्तवन है । सच्चिदानंद सिद्धि के लिये यह बाह्य एवं अंतरंग धर्म है ।

(मंगल पाठ)

मंगलं भयवदो आदा मंगलं अणयंत धम्मो ।
मंगलं रयणत्तयं मंगलं वत्थु सहावो ।।

अर्थ—भगवान आत्म मंगलमय है, अनेकान्त धर्म मंगल मय है, रत्नत्रय मंगलमय एवं वस्तु स्वभाव मंगलमय है ।

[द्वितीय परिच्छेद]

पवित्र भावना

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः, संगतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्तानां गुणगण कथा, दोष वादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहित वचो, भावना चात्मतत्त्वे,
संपद्यंतां मम भवभवे, यावदेतेऽपवर्गः ।।

अर्थ—हे दयामय भगवन् ! जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक मेरे जन्म-जन्मान्तर में ये निम्न-लिखित बातें होती रहें ।

(१) सर्वज्ञ वीतराग भगवान द्वारा प्रतिपादित सत् शास्त्रों के स्वाध्याय का अभ्यास बना रहे ।

(२) जिसने अन्तरंग शत्रु एवं इन्द्रिय मन को जीत लिया है, उस जिनेन्द्र देव की स्तुति करता रहूँ ।

(३) मैं सदा सत् पुरुषों की संगति में रहूँ ।

(४) मैं श्रेष्ठ चारित्र एवं चारित्रवानों के गुणों की कथा में ही लीन रहूँ ।

(५) दूसरों के दोषकथन में सर्वदा मौनव्रत धारण करूँ।

(६) सभी के लिये प्रिय एवं हितकारी वचन बोलूँ।

(७) सर्वदा मेरी भावना आत्मचिंतन-मनन एवं आत्मोन्नति में लगी रहे।

"असतोर्मा सद्गमय
तमसोर्मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय"

हे करूणामय पतित पावन भगवन् मेरे को असत् (मिथ्या) से सत् (सम्यक्) की ओर ले चलो। अज्ञान रूपी मोहांधकार से ज्ञान रूपी ज्योति की ओर ले चलो। ससार रूपी मृत्यु लोक से मोक्षरुपी अमृत लोक की ओर ले चलो।

विश्व शांति भावना—

"सर्वेऽपि सुखिनः संतु
सर्वे संतु निरामय
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ।।"

यशस्तिलक चम्पू

हे करुणामय भगवान विश्व के सर्व जीव सुखी रहें, निरोगी रहें, जीव सच्चरित्र मय, सज्जनमय दृष्टिगोचर होवें, कोई कभी भी दुःख को प्राप्त न हो ।

शिव मस्तु सर्व जगतःपरहित निरता भवन्तुभूतंगणाः।
दोषाः प्रयन्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ।।

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, सम्पूर्ण जीव-जगत परहित में रत रहे, सम्पूर्ण दोषों का नाश हो, सदा सर्वदा सब जीव जगत सुखी रहे ।

संपूजकानां प्रतिपालकानां ।
यतीन्द्र सामान्यतपोधनानाम् ।।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः ।
करोतु शांति भगवाञ्जिनेन्द्रः ।।

हे जितारि जितेन्द्रिय भगवान, पूजा करने वालों (धर्म उपासकों) के लिये, धर्म-धर्मायतन एवं धर्मात्माओं की रक्षा करने वालों के लिये, सामान्य एवं विशेष साधु-संत, सज्जन एवं तपस्वियों के लिये, देश, राष्ट्र, नगर, राजा के लिये शांति प्रदान करें ।

क्षेमं सर्व प्रजानां, प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्विकिरतु मघवा, व्याधयो यांतु नाशम् ।।
दुर्भिक्षं चोरमारिःक्षणमपि जगतां, मास्म भूज्जीव लोके ।
जैनेन्द्रं धर्म चक्रं, प्रभवतु सततं, सर्व सौख्य प्रदायि ।।

इस विश्व में समस्त प्रजा (प्राणी जगत) का कल्याण हो, धार्मिक राजा सर्व शक्ति सम्पन्न हो, समय-समय पर बादल (इन्द्र) उत्तम वर्षा करें, सर्व रोग नष्ट हो जावे, दुर्भिक्ष, महामारिरोग, चोरी आदि दुर्घटना एक क्षण के लिये भी इस जीव लोक में नहीं रहे। सर्व सुख को देने वाले जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित अहिंसा, उत्तमक्षमादि धर्म समूह बिना प्रतिबंध से सम्पूर्ण जगत में प्रचार-प्रसार को प्राप्त होवे।

प्रध्वस्त घाति कर्माणः केवल ज्ञान भास्कराः।
कुर्वंतु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः॥

जो आत्मघातक रुप चार घातियाँ कर्मों को नष्ट करके केवलज्ञान रुपी सूर्य-से प्रकाशमान है, इसी प्रकार के आदिनाथ भगवान से लेकर महावीर भगवान पर्यन्त सभी भगवान जगत को शांति प्रदान करें।

ॐ शांति ! शांति !! शांति !!!

अमृत-वाणी

वीतरागान्नापरो देवः आगमान्नपरो वेदः।
निर्ग्रन्थान्नापरो गुरूः अहिंसान्नापरो धर्मः॥

वीतराग को छोड़ अन्य कोई देव नहीं है, आगम को छोड़कर कोई वेद नहीं है, निर्ग्रन्थ को छोड़ कोई गुरू नहीं है, अहिंसा छोड़ अन्य कोई धर्म नहीं है ।

न ज्ञानात् परो ज्योतिः न अज्ञान समं तमः ।
न समता समं सुखं न तृष्णात्परो दुःखम् ॥

ज्ञान से बढ़कर कोई ज्योति नहीं है, अज्ञान से बढ़कर कोई अंधकार नहीं है । समता के समान कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बढ़कर कोई दूसरा दुःख नहीं है ।

रत्नत्रय समं धनं णमोकार समं मंत्रं ।
आत्म तीर्थं समं तीर्थं न भूतो न भविष्यति ॥

रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) के समान अन्य कोई धन न हुआ है, न होगा, णमोकार मंत्र के सदृश्य कोई मंत्र न हुआ, न होगा, आत्म तीर्थ के सदृश्य अन्य कोई तीर्थ न हुआ, न होगा ।

आत्म विद्या समं विद्या आत्म हिंसा समं हिंसा ।
आत्म मित्र समं मित्र न त्रिकाल लोके सन्ति ॥

तीन लोक, तीन काल में आत्म विद्या के सदृश्य अन्य विद्या नहीं है, आत्महिंसा के समान हिंसा नहीं है, आत्म मित्र के समान अन्य मित्र नहीं है ।

न धर्म कल्पवृक्ष समं तरु, नभाव तीर्थं समं अस्ति तीर्थं ।
मनसमानंनान्य चंचलास्ति, आत्मशक्ति समंनशक्ति मस्ति॥

धर्म कल्पवृक्ष के सदृश अन्य कोई कल्पवृक्ष नहीं है, भाव तीर्थ के समान अन्य कोई तीर्थ नहीं है, मन समान अन्य कोई वस्तु चंचल नहीं है, आत्म शक्ति समान अन्य कोई शक्ति नहीं है ।

विवेक समं न राजहंसः मधुर वचन समं नही पिकः ।
गुण ग्राहक समं मधु मक्षिः निन्दक समं नही गृद्ध पक्षिः ।।

विवेक के समान कोई राजहंस नही है, मधुर वचन के समान कोई कोकिल नहीं है । गुण ग्राहक के समान मधुमक्खी नहीं है, निन्दक के समान कोई गृद्धपक्षी नहीं है ।

सुगुण समं नहि गन्धमस्ति न वीर्यं समं प्रतापमस्ति ।
न राग समानं बन्धनमस्ति, न क्रोध समानं अनलमस्ति।।

सुगुण के समान अन्य कोई गन्ध नहीं है । आत्मवीर्य के समान कोई प्रताप नहीं हैं, राग (आशक्ति मोह) समान अन्य कोई बन्धन नहीं है, क्रोध के समान अन्य कोई अग्नि नही हैं ।

विषय समानं विषं, मोह समानं रिपुः ।
कुभाव समानं हिंसा त्रैलोक्य मध्ये नास्ति ।।

तीन लोक में विषय वासना के समान अन्य कोई विष नहीं है, मोह के समान अन्य शत्रु नहीं है— दुषित-कुभाव के समान अन्य हिंसा नहीं है ।

नहि नहि अमृतं अहिंसा समं क्वचित् ।
नहि नहि भोजनं सुज्ञान समं क्वचित् ॥
नहि नहि व्यापार सुध्यान समं क्वचित् ।
नहि नहि सुवीरः मुमुक्षु समं क्वचित् ॥

अहिंसा के समान अन्य अमृत नहीं है, नहीं है। सुज्ञान के समान अन्य कुछ भोजन नहीं है, नहीं है। सुध्यान के समान अन्य कुछ व्यापार नहीं है, नहीं है। मुमुक्षु के समान अन्य कोई उत्तम वीर नहीं है, नहीं है।

विनय समं न नीति स्वाध्याय समं तपः ।
स्वरूचि समं स्वाद प्रेम समानं बन्धः ॥
न क्षमा समं शास्त्र लोभ समानं पापं ।
धैर्य समानं शक्तिः त्रैलोक्येनान्य अन्य ॥

अर्थ—तीन लोक में विनय समान अन्य कोई नीति नहीं है। स्वाध्याय के समान अन्य कोई तप नहीं है, अपनी रुचि के समान अन्य कोई रुचि नहीं है, प्रेम के समान अन्य कोई बन्धन नहीं है। क्षमा के समान अन्य कोई शास्त्र नहीं है, लोभ के समान अन्य कोई पाप नहीं है, धैर्य के समान कोई शक्ति नहीं है।

स्वाधीन सुखं परमेव सुखं ।
भोग समं रोग न अन्य क्वचित् ॥

रत्नत्रय धारी समं न श्रीमान् ।
भारवाहि पशु रेव धनवान ।।

अर्थ– स्वतन्त्र सुख ही परम सुख है, भोग के समान अन्य कोई रोग नही है, रत्नत्रय धारी के समान कोई श्रीमन्त नहीं है, धनवान् के समान भार वहन करने वाले अन्य कोई पशु नहीं है ।

धर्मः विवेकः नीतिज्ञानं हीनं ।
वात्सल्यः बन्धुत्त्व समता हीनं ।
मनुष्य समानं न पशुरस्ति ।
परोपकारी पशुरेव श्रेष्ठः ।।

अर्थ—धर्म-विवेक नीति-ज्ञान वात्सल्य विश्वबन्धुत्त्व, समताभाव से रहित मनुष्य के समान अन्य कोई पशु नहीं है अर्थात् वह मनुष्य सब से बड़ा पशु है, इसी प्रकार के मनुष्य से परोपकारी पशु श्रेष्ठ है ।

दुर्जन—

परोपकार दुग्ध पाने सो ऽ पि ।
कृतघ्न विषं प्रदाने संलग्नः ।।
दुर्जन समं नहि विषधरः ।
मंत्रेन शाम्यति दुर्जन नरः ।।

अर्थ—परोपकार रूप दुग्ध पान करते हुए भी जो

कृतघ्न रुपी विष प्रदान करने के लिये तत्पर है, उस प्रकार दुर्जन समान अन्य कोई विषधर सर्प नहीं है, क्योंकि विषधर सर्प मंत्र के माध्यम से प्रशम भाव को प्राप्त हो जाता जाता है, किन्तु दुर्जन कभी भी प्रशम भाव को प्राप्त नहीं होता है ।

सुगुण शतेऽपि समाश्रितोऽपि ।
कुगुण पुरस्कृतः ग्रहणे शक्तः ।।
दुर्जन समानं नहि जलौक ।
दूरेऽपि कुगुणः ग्रहणे शक्तः ।।

अर्थ—शतशः सुगुण अन्य में रहते हुए भी दुर्जन केवल उन से कुगुण ग्रहण करने में समर्थ होता है, दुर्जन के समान अन्य कोई जोंक नहीं है, क्योंकि जोंक थन में लगकर ही दूध को छोड़कर रक्त (खून) शोषण करता है, परन्तु दुर्जन दूर से ही सुगुण को छोडकर दुर्गुण ग्रहण करता है ।

ईर्षक समानं नहि इन्दुरः ।
सन्तः सुगुणः किर्त्तने चतुरः ।।
मुषकः लुनन्ति निकटस्थ वस्तुं ।
ईर्षकः लुनन्ति दूरे स्थितोऽपि ।।

अर्थ—दुर्जन के समान अन्य कोई चूहा नहीं है

क्योंकि दुर्जन, सज्जन में स्थित सुगुण को काटने में चतुर है। चूहा निकट स्थित वस्तु को ही काटता है, किन्तु दुर्जन दूर से ही सज्जन के गुण को काट डालता है।

दुर्जन शिष्य समं नहि अग्नि।
दहति शिक्षाः अाशिक्षातापि ।।
ईन्धन हीन दूरस्थ अग्नि।
न दहतिकुशिष्योऽभयरेपि ।।

अर्थ—दुर्जन शिष्य के समान अन्य कोई अग्नि नहीं है, दुर्जन शिष्य सुशिक्षा देने पर अथवा शिक्षा न देने पर अथवा शिक्षा न देने पर भी गुरु को संताप देता है। ईन्धन रहित अग्नि अथवा दूरस्थ अग्नि जलाती नहीं है, परन्तु दुष्ट शिष्य समीप में या दूर रहकर भी गुरु को संताप देता है।

निन्दक समं नहि चित्रकारः।
सम सुगुणे विषमः आकारः ।।
मूर्तिक द्रव्ये समो असमः।
किंतु अमूर्तिक गुणे निन्दकः ।।

अर्थ—निन्दक के समान अन्य कोई चित्रकार नहीं है। जैसे एक चित्रकार समतल कागज या फलक में ही अपनी कला कौशल्य के माध्यम से ऊँचा-नीचा प्रदर्शन करा

सकता है—किन्तु निंदक अमूर्तिक गुण में भी ऊँचा-नीचा प्रदर्शन करता है ।

सज्जन

सज्जन समानं न कदा सरोज ।
मित्रागमे विकाशितः रात्रौ म्लान मुखः ।।
अहो ! सज्जन सरोज सदा विकाशितः ।
निन्दा प्रशंसा सर्वत्र शत्रु किं वा मित्रे ।।

अर्थ—सज्जन के समान कमल कदापि नहीं हो सकता है, क्योंकि कमल मित्र (सूर्य) के उदय से विकसित होता है, मित्र के अभाव में म्लानमुख हो जाता है । परन्तु आश्चर्य की बात है कि सज्जन रूपी कमल निंदा-प्रशंसा, शत्रु-मित्र, सर्वत्र ही विकसित ही रहता है ।

सज्जन समानं नहिं कदापि सलिल ।
अग्नि सम्पर्केन उष्णमेव अति शीघ्र ।।
दावानल अग्नि समं दुर्जनः सम्पर्के ।
सज्जन स्वशीतलता न त्यजे त्रिकाले ।।

अर्थ—यदि कदाचित् सूर्य का उदय पश्चिम में हो सकता है, अग्नि शीतल हो सकती है, चन्द्र ताप दे सकता है, समुद्र स्वमर्यादा का त्याग कर सकता है, तो भी सज्जन स्व–स्वभाव को त्याग नहीं कर सकता है ।

निन्दा प्रशंसा प्रसंगे शत्रू-मित्र वर्गे ।
लाभालाभे जोविता-मरणे सर्व लोंके ।।
समुद्रवत् गम्भीर मेरुवत् स्थिरम् ।
यः तिष्ठत् स एव सज्जनःधीर.वीरः ।।

अर्थ—जो निंदा एवं प्रशंसा के सम्बध में शत्रु एवं मित्र वर्ग में, लाभ-अलाभ में जीवन-मरणादि सर्व काल में समुद्र समान गम्भीर सुमेरु के समान स्थिर रहता है, वही सज्जन धीर है, वीर है।

यदि सूर्यः कदापि पश्चिमे उदिश्यति ।
अग्नि शीतलता याति चंद्र तापयनि ।।
समुद्र यदि कदापि स्वमर्यादा त्यागे ।
तथापि सज्जनः स्व स्वभाव न त्यागे ।।

अर्थ—सज्जन से शीतल पानी भी नहीं हो सकता, क्योंकि अग्नि सम्पर्क से पानी अपने शीतलता को छोड़कर उष्ण हो जाता है। अपने स्वभाव को छोड़ देता है। परन्तु दावानल (अग्नि) के समान दुर्जन के सम्पर्क से भी सज्जन, कभी अपनी शीतलता अर्थात् अपनी सज्जनता (सौजन्यता) तीन काल में भी नहीं छोड़ते हैं।

परस्त्री दर्शने अन्धः गमने च नपुंसकः ।
विकथा निन्दा श्रवणे बधिरमेव भावः ।।

असत्य भाषणे मूकः कुकार्ये च पंगुः ।
मुग्ध कुविचारे अहो कृति सज्जनस्य ।।

अर्थ—अहो ! सज्जन की कृति अत्यन्त अलौकिक है, सज्जन पर स्त्री देखने के लिये अंध के समान है, पर स्त्री गमन के लिये नपुंसक के समान है । विकथा पर निंदा सुनने में बधिर के समान है । असत्य भाषण के लिये मूक के समान है, कुकर्म करने के लिये पंगु के समान है । एवं कुविचार कहने के लिये मूढ के समान है ।

ज्ञानम्

ज्ञानं समान नहि कोटि रश्मिः ।
क्षेत्र कालावधि प्रकाशयति ।।
ज्ञानं तु पुनः चैतन्य रश्मिः ।
सर्व क्षेत्र काल प्रकाशयन्ति ।।

अर्थ–भौतिक सूर्य, ज्ञान सूर्य के समान नहीं है, क्योंकि भौतिक सूर्य तो सीमित काल में सीमित क्षेत्र को ही प्रकाशित करता है । परन्तु ज्ञान सूर्य में जो चैतन्यरश्मि है, वह चैतन्यरश्मि सर्व काल एवं सर्व क्षेत्र को प्रकाशित करती है ।

ज्ञानी

ज्ञानी समान नहि चक्रवर्ती ।
क्षेत्र कालावधि प्रभूत्वे स्थिति ।।

ज्ञानी जयन्ति समस्त विश्वम् ।
अनंत सुख ईशत्वे स्थितिः ।।

अर्थ—ज्ञान साम्राज्य के अधिपति ज्ञानी के समकक्ष चक्रवर्ती नहीं हो सकता क्योंकि चक्रवर्ती निश्चित (सीमित) समय तक छह खण्ड के ऊपर अधिपत्य का विस्तार करता है। परन्तु ज्ञानी समस्त विश्व को जय करके सर्व काल अनंत सुख एवं ईशत्व को प्राप्त होता है ।

कालरात्रि

मोह रेव महा मद्यः अज्ञानामेव काल रात्रिः ।
इच्छारेव महास्वप्नं स्वजागृते विनश्यति ।।

अर्थ—मोह ही महान् मद्य है, अज्ञान ही काल रात्रि है । इच्छा ही महा स्वप्न है । जब प्रबुद्ध आत्मा, आत्मा से जागृत हो जाता है, तब मोह रूपी मद्य, अज्ञान रुपी काल रात्रि एवं इच्छा रुपी महान स्वप्न विनाश को प्राप्त होता है ।

मोह महा मद्य पानेन जीव ।
अज्ञान रात्रौ मध्ये स्वपयति ।।
आकाक्षां स्वप्नं पश्यति सर्वदा ।
आत्म जाग्रते समस्त नश्यन्ति ।।

अर्थ—मोह रूपी महा मद्यपान करके यह जीव अज्ञान

रूपी रात्रि में शयन करता है, आकांक्षा रूपी स्वप्न सर्वदा देखता ही रहता है, परन्तु जिस समय आत्मजागृति होती है। उस समय उपरोक्त समस्त कार्य विलीन हो जाते हैं।

स्वस्वरूप स्तोत्रम्

जिनं शुद्ध ज्ञानी सिद्ध आत्म रूपं।
सूक्ष्मं परं श्रेष्ठं परमार्थ रूपम्॥
अव्यक्तं अव्ययं अनादि अनंतं।
चिदानंद रूपं नमो स्वस्वरूपम्॥१॥

स्वयंभूः श्रीधरः अच्युतो माधवः।
सुगतः कामारि निरंजन रूपम्॥
पूर्ण शून्यरूपं द्वैताद्वैत रूपं।
चिदानंद रूपं नमो स्वस्वरूपम्॥२॥

एकानेक रूपं व्यक्ताव्यक्तरूपं।
अरूपी स्वरूपी विचित्र स्वस्वरूपम्॥
चैतन्याचैतन्य अनेकांत रूपं।
चिदानंद रूपं नमो स्वस्वरूपम्॥३॥

अकर्त्ता सकर्त्ता भोक्ता भोक्तरूपं।
अमूर्ति समूर्ति मुक्तामुक्त रूपम्॥

ज्ञाताज्ञात रूपं ज्ञान ज्ञेय रूपं।
चिदानंद रूपं नमो स्वस्वरूपम् ।।४।।

स्वात्मस्थ स्वरूपं विश्व व्यापि रुपं।
प्रणाम स्वरूपं अप्रमाणरूपम् ।।
सर्वात्म स्वरूपं स्याद्वाद स्वरूपम्।
चिदानंत रूपं नमो स्वस्वरूपम् ।।५।।

ध्यानातीत रूपं ध्यान मय रूपं।
ज्ञानमय रूपं ज्ञेयातीत रूपम् ।।
सदसद्रूपं अस्तिनास्ति रूपं।
चिदानंद रूपं नमो स्वस्वरूपम् ।।६।।

न कर्म नो कर्म न रागादि रूपं।
न लेश्या न योग न भोगादि रूपम् ।।
न वर्ण न गंधं न रागादि रुपं।
चिदानन्द रूपं नमो स्वस्वरुपम् ।।७।।

न पुण्यं न पापं न जन्म न मृत्यु।
न मित्रं नामित्रं न शिष्य न गुरूम् ।।
न दीनं न हीनं न वृद्धो न बालो।
चिदानन्द रूपं नमो स्वस्वरूपम् ।।८।।

न देवं न नरं न नारकी रूपं।
न लिंग नालिंग लिंगातीतरूपम् ।।

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न शून्यं ।
चिदानन्द रूपं नमो स्वस्वरूपम् ।।९।।

निर्दण्ड निर्द्वन्द्व निर्मम निर्दोषं ।
निक्षोभ निष्काम भयातीत रूपम् ।।
अक्षयं अनन्तं गुणाधीश रूपं ।
चिदानन्द रूपं नमो स्वस्वरूपम् ।।

ज्ञानमय सुखाकरं ।
चैतन्य बिभू सर्वज्ञम् ।।
मम सर्वस्य गुरु प्रभू ।
पिता माता नमाम्यहम् ।।



तृतीय परिच्छेद

स्वाभाविक धर्म, विश्व तत्त्व

जैसे साधारण नागरिक अपने जीवन यापन के लिये कृषि करता है, दूसरा कोई व्यापार करता है, अन्य कोई नौकरी करता है, अन्य कोई शिल्प कार्य करता है। उनके कार्य क्षेत्र एवं पद्धति पृथक-पृथक होते हुए भी लक्ष्य केवल एक ही है—जीवन यापन करना। उसी प्रकार विभिन्न परिस्थिति, देश काल आदि को लेकर धर्म की विभिन्न परिभाषाये होते हुए भी धर्म का एक ही उद्देश्य है–सुख-शांति प्राप्त करना। धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है। धृ का अर्थ धारण करना। जिसमें धारण करने की शक्ति है, उसको धर्म कहते हैं।

धर्म की विभिन्न परिभाषायें—

"देशयामी समीचीनं धर्मं कर्मं निवृर्हणम्।
संसार दुखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे॥"

महान् दार्शनिक तत्त्ववेत्ता, तार्किक चूडामणि समन्त भद्र स्वामी प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं उस धर्म को कहूँगा

जो धर्म संसारी जीवों के समस्त मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक दुःखों के कारणभूत कर्मों को नाश करके अनंत उत्तम सुख में धारण करता है। इससे सिद्ध होता है कि धर्म के माध्यम से अधिदैविक, अधिभौतिक एवं आध्यात्मिक इहलोक, परलोक आदि भय से निवृत्ति होती है एवं जीव को शाश्वतिक अतीन्द्रिय आध्यात्मिक अनंत सुख प्राप्त होता है। कहा है—

"यस्मात् अभ्युदय निश्रेयस्य सिद्धि स धमः।"

जिससे स्वर्गादि का अभ्युदय सुख एवं निर्वाण रूपी परम सुखकी सिद्धि होती है, उसको धर्म कहते हैं। कहा है—

धर्मः सर्व सुखा करो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणेव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भावभृतां धर्मस्य मूलं दया।
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय॥

धर्म सर्व प्रकार के सुख को देने वाला है, हित करने वाला है, धर्म से ही निर्वाण अथवा मोक्ष सुख मिलता है। इसीलिये हे सुख इच्छुक भव्य जीव धर्म को ही संचित करिये। धर्म को छोड़कर संसारी जीवों का कोई भी हित करने वाला नहीं है। धर्म का मूल दया अर्थात् करुणा या

अहिंसा है । धर्म में मैं अपने चित्त को प्रतिदिन लीन करता हूँ। हे जगत् उद्धारक, सुख शांति प्रदायक! धर्म मेरा पालन कीजिये ।

पवित्री क्रियते येन येनैव ध्रियते जगत् ।
नमस्तस्मै दयाद्रीय धर्म कलपाङ्घ्रिपाय वै ।।

जिससे जीव पवित्र हो जाता है और जो विश्व को धारण करता है, दया से आर्द्र धर्मरूपी कल्पवृक्ष की चरण को मैं नमस्कार करता हूँ, अर्थात् धर्म से ही पतीत जीव पावन हो सकता है, दानव मानव हो सकता है, मानव महा मानव, भगवान बन सकता है, यह संपूर्ण चराचर विश्व धर्म से आधारित है ।

धर्मो गुरुश्च मित्रं च धर्मः स्वामी च बान्धवः ।
अनाथ वत्सल सोऽयं स त्राता कारणं विना ।।

धर्म ही गुरु है, मित्र है, स्वामी है, बांधव है, अनाथ का रक्षक है और बिना स्वार्थ से रक्षण करने वाला है ।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सयामणो ।।

धर्म ही लोक में उत्कृष्ट मंगल है, अहिंसा—धर्म है, संयम-धर्म है एवं तप धर्म है । जिसका मन सर्वदा धर्म में

लीन रहता है, उसको स्वर्ग के देव भी नमस्कार करते हैं।

संक्षिप्त में धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ—

वत्थु सहावो धम्मो अहिंसा खमादि आद धम्मो।
रयणत्तयं य धम्मो अणेयंत सुभावणा धम्मो॥

वस्तु का स्वभाव धर्म है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एवं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन, ब्रह्मचर्य ये आत्म धर्म है। रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक् चारित्र धर्म है। अनेकांत (स्याद्वाद) बारह भावना एवं मैत्री, प्रमोद, करुणा एवं माध्यस्थभाव भी धर्म है।

इस संक्षिप्त गाथा सूत्र में जो धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं, शब्दतः पृथक-पृथक होते हुएँ भी भाव एक ही है। इसमें प्रायः विश्व में प्रचलित धर्म संप्रदाय की धार्मिक परिभाषाएँ गर्भित हैं। वस्तु स्वभाव धर्म यह सामान्य परिभाषा है, चेतन अचेतन द्रव्य में जो स्व स्वभाव हैं, वही भाव उनका धर्म है, जैसे पुदगल का धर्म जड़त्व एवं जीव का धर्म चेतनत्व है। इस परिभाषा में संपूर्ण धार्मिक परिभाषाएँ गर्भित हैं। परंतु उत्तरवर्ती परिभाषाएँ चैतन्य द्रव्य अर्थात् जीव द्रव्य का स्वभाव रूप धार्मिक परिभाषाएँ हैं।

वस्तु स्वभाव धर्म

(६ द्रव्यों का धर्म)

"वत्थु सहावो धम्मो"—

वस्तु स्वभाव रूप धर्म—यह समग्र विश्व परिणमन शील होते हुए भी शाश्वतिक है अर्थात् विश्व की कभी सृष्टि नहीं हुई, कभी विनाश नहीं होगा, परन्तु प्रत्येक क्षण में परिणमन होता रहेगा।

यथा लोगो अकिट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहिं फुडो सव्वागासाव यवो णिच्चो ।।

त्रिलोकसार गाथा ४

निश्चय से लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन, स्वभाव से निष्पन्न जीवाजीवादि द्रव्यों से सहित, सर्वाकाश के अवयव स्वरूप और नित्य है।

"प्रतिक्षण गच्छतीति जगत्"

स्थिति जनन निरोध लक्षणं चरमचरं च जगत्प्रतिक्षणम् ।
(मुनिसुव्रत=बृहत्स्वयंभू स्तोत्र)

जो प्रतिक्षण गमन करता है अथवा परिणमन करता है उसको जगत कहते हैं।

चराचर रूपी जगत् प्रतिक्षण उत्पन्न होता है, नाश होता है एवं स्थिति को प्राप्त होता है ।

नैवासतो जन्मसतो न नाशो दीपस्तमः पुद्‌गल भावतोऽस्ति।।
(बृहत स्वयभू स्त्रोत्र=सुमतिनाथ)

सर्वथा असत् द्रव्य सर्वथा उत्पन्न नही हो सकता है एवं सर्वथा सत् द्रव्य का नाश नहीं हो सकता है, केवल परिवर्तन हो सकता है जैसे दीपक की प्रज्वलित अवस्था में समीपस्थ पुद्‌गल स्कंध प्रकाश रूप में परिणमन होते हैं एवं दीपक बुझने के पश्चात् वही प्रकाशमय पुद्‌गल स्कंध अंधकार (तम) रुप में परिणमित हो जाते हैं । परंतु पुद्‌गल स्कंधोंका सर्वथा नाश नहीं होता है । गीता में भी कहा है—

"नाऽसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।"

सर्वथा असत् का सद्‌भाव नहीं होता है एवं सर्वथा सत् का अभाव नहीं हो सकता है ।

वर्तमान भौतिक वैज्ञानिक लोगों ने भी सिद्ध किया है कि—

Nathing can be distroyed and nothing can be created but only the form can be changed.

कोई भी नवीन वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है । कोई भी सद्भूत द्रव्य का नाश नहीं होता है । परंतु उसके आकार प्रकार में परिवर्त्तन हो सकता है, इससे सिद्ध होता है कि विश्व अकृत्रिम अनादि निधन एवं परिणमनशील है । इस विश्व में अर्थात् लोकाकाश में जीव द्रव्य एवं अजीव द्रव्य भरे हुए हैं । यह लोकाकाश (विश्व) अलोकाकाश के मध्य में स्थित है ।

विश्व में सामान्य रुप से दो द्रव्य हैं—१. जीव (Soul) २. अजीव । अजीव के पांच भेद हैं—१. पुद्गल (Matter) २. धर्म (Media of motion) ३. अधर्म (Media of rest) ४. आकाश (Space) ५. काल (Time) । इसी प्रकार संपूर्ण द्रव्य छः प्रकार का है । इन द्रव्यों का जो स्वभाव है, वह "वस्तु स्वभाव धर्म" के अन्तर्भूत है । अतः सामान्य रुप से संपूर्ण द्रव्यों के "वस्तु स्वभाव धर्म" निम्नलिखित है—

अत्थित्त वत्थुत्त पमेयत्त अगुरुलहु भावो ।
उप्पाद वय धुव्वत्त सव्व दव्वाण सामण्णो धम्मो ।।

अस्तित्त्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरु-लघुत्त्व, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये सर्व द्रव्यों का सामान्य धर्म हैं ।

अस्तित्त्व—जिस धर्म के माध्यम से प्रत्येक द्रव्य विश्व में सद्भाव स्वरूप है, उसको अस्तित्व धर्म कहते हैं । होना

रहना, सद्भाव ये सब अस्तित्व के पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिए जैसे आकाश अथवा आत्मा-परमात्मा शाश्वतिक है, उसी प्रकार भौतिक द्रव्य भी शाश्वतिक है।

वस्तुत्व—वस्तुत्व धर्म के कारण प्रत्येक द्रव्य अंतरंग-बहिरंग के सद्भाव से अपना-अपना कार्य करता है।

प्रमेयत्व—इस धर्म के कारण प्रत्येक द्रव्य ज्ञान का विषय बनते हैं अर्थात् ज्ञान इस धर्म के माध्यम से ज्ञेय वस्तु को जानता है।

अगुरुलघुत्व—इस धर्म के कारण द्रव्य खण्डित होकर अन्य द्रव्य रुप परिणमन नहीं करता है। यह स्थिति स्थापक गुण है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य—पूर्व पर्याय का नाश होना व्यय है, नवीन पर्याय की उत्पत्ति अथवा सृष्टि होना उत्पाद है एवं दोनों परिस्थिति में द्रव्य का कायम रहना ध्रौव्य है। जैसे–कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है, इससे मिट्टी रुप पूर्व पर्याय का नाश हुआ, घड़ा रुप उत्तर पर्याय की उत्पत्ति हुई और दोनों अवस्थाओं में मिट्टी रुप द्रव्य का सद्भाव ध्रुवता है।

जीव द्रव्य का धर्म—

चेदण णाणं दंसणं, सुह अणंत विरीय अव्वावाहं।
णिम्मम णिरापेक्खं जीवाणं उत्तमो धम्मो ।।२६।।

अर्थ—चेतना अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अवगाहनत्व, निर्ममत्व, निरपेक्ष भाव जीवों के उत्तम धर्म हैं ।

उपरोक्त छहों द्रव्यों में जीव द्रव्य सबसे अति उत्तम द्रव्य है । क्योंकि जीव में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि उत्तम-उत्तम गुण पाये जाते हैं । विश्व में अनंतानंत स्वतंत्र-स्वतन्त्र जीव हैं । उसमें से अनंत जीव स्वतन्त्र अनंत सुख को भोग करने वाले मुक्त जीव हैं और अनंत जीव कर्म बन्धन में पड़कर परतन्त्र होकर अनंत दुःख सहने वाले भी हैं । सुख अथवा मुक्तावस्था, दुःख अथवा संसारावस्था स्वयं जीव निर्माण करता है ।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुक्खाण य सुहाणय ।
अप्पा मित्तममित्तं य दुप्पाट्ठिय सुपट्ठिय ।।

अर्थ—आत्मा स्वयं सुख-दुःख कर्त्ता है । सुपथगामी आत्मा स्वयं का मित्र है एवं कुपथगामी आत्मा स्वयं का शत्रु है ।

स्वभावतः प्रत्येक आत्मा द्रव्यदृष्टि से समान है, प्रत्येक आत्मा में अनंत सुख आदि गुण सद्भाव होते हुए भी स्व अर्जित कर्म के कारण वह अनंत सुखादि वर्तमान में तिरोहित हैं, किन्तु नाश नहीं हुए है । जब प्रबुद्ध आत्मा

स्व पुरुषार्थ के माध्यम से जीव के स्वभावभूत आगे वर्णित अहिंसा उत्तम क्षमादि धर्म का पालन करेगा तब पूर्व संचित कर्म नष्ट होकर, तिरोहित ज्ञान-सुखादि गुण प्रकट हो जायेंगे। उस कर्म रहित अवस्थित जीव को ही परमात्मा कहते हैं। अर्थात् पतीत आत्मा ही धर्म साधन के माध्यम से पावन होकर परमात्मा बन जाता है। जिस प्रकार खान से निकला हुआ अशुद्ध स्वर्ण सोलह ताप अग्नि से शुद्ध स्वर्ण हो जाता है। उसी प्रकार कर्म कलंक से दूषित संसारी आत्मा भी धर्म रूप अग्नि से शुद्ध होकर परमात्मा बन जाता है।

मुक्त जीव—

समस्त कर्म से मुक्त होने के बाद मुक्त जीव एक समय में सिद्धशिला में विराजमान हो जाते हैं और वहां पर अनंत सुखादि गुणों को भोगते हुए वहां ही भविष्यत् अनंत काल तक स्थिर रहते हैं। संसार में वापिस आने से रूप कर्म के अभाव से पुनः संसार में नहीं आते हैं। वहां विश्व को देखते, जानते हैं, परन्तु किसी के भी कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता नहीं हैं। क्योंकि वे राग-द्वेष से रहित हैं।

संसारी जीव—

संसारी जीव के दो भेद हैं—(१) स्थावर (२) त्रस

स्थावर—जिस जीव में केवल स्पर्शन इन्द्रिय ही रहता है, उस जीव को स्थावर जीव कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—

(१) पृथ्वीकायिक (२) जलकायिक (३) अग्नि-कायिक (४) वायुकायिक (५) वनस्पतिकायिक।

पृथ्वीकायिक—जिस जीव का स्वरूप पृथ्वी स्वरूप है, उसे पृथ्वीकायिक जीव कहते हैं, पत्थर, मिट्टी, मणि आदि इसके भेद हैं।

जलकायिक—जल ही जिस जीव का शरीर है, उसे जलकायिक कहते हैं। जैसे—पानी, ओस, बर्फ आदि।

अग्निकायिक—अग्नि ही जिस का शरीर है, उसे अग्नि-कायिक जीव कहते हैं। जैसे—अग्नि, दीप, शिखादि।

वायुकायिक—जिसका शरीर वायु ही है, उसे वायु-कायिक जीव कहते हैं। जैसे—हवादि।

वनस्पतिकायिक—जिस जीव का शरीर वनस्पति है, उसे वनस्पतिकायिक कहते हैं। जैसे—आम का वृक्ष, गुलाब का वृक्ष, रामफल का वृक्ष, सीताफल का वृक्ष आदि।

निगोदिया जीव—

वनस्पति के दो भेद हैं—(१) साधारणवनस्पति, (२) प्रत्येकवनस्पति।

साधारण वनस्पति—जिस वनस्पतिकायिक जीव के एक शरीर के आश्रय में अनंतानंत जीव रहते हैं और वे सब एक साथ जन्म लेते हैं, एक साथ श्वासोच्छ्वास लेते हैं, एक साथ भोजन करते हैं और एक साथ मरते हैं उन्हें साधारणवनस्पति कहते हैं।

वर्तमान जीव विज्ञान की अपेक्षा हम सेगाणु बैक-टिरिया या वायरस कह सकते हैं। उपरोक्त पांच स्थावर में शरीर बल स्पर्शन इन्द्रिय स्वासोच्छ्वास एवं आयु प्राण इस प्रकार चार प्राण होते हैं। वे जन्म लेते हैं, आहार ग्रहण करते हैं, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं, भयभीत होते हैं, जीवनोपयोगी सामग्री संग्रह करते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं, मैथुन करते हैं एवं मरते भी हैं।

उपरोक्त पांच स्थावर के दो भेद हैं—(१) सूक्ष्म, (२) बादर।

सूक्ष्मजीव—

सूक्ष्मजीव बिना आधार से रह सकते हैं, इसलिए सूक्ष्मजीव सम्पूर्ण लोक में भरे हैं। सूक्ष्मजीव दूसरों को बाधा नहीं देते हैं एवं दूसरों से बाधित नहीं होते हैं, अर्थात् सूक्ष्मजीव को कोई रूकावट डाल नहीं सकता है, मार नहीं सकता है, जला नहीं सकता है।

बादरजीव—

बादरजीव को रहने के लिए आधार चाहिये। इसलिये बादर जीव सम्पूर्ण लोक में भरे हुए नहीं हैं, परन्तु आठ पृथ्वी के आधार पर एवं स्थूल जीवों के शरीर में रहते हैं।

नित्यनिगोद—

जो अभी तक त्रसपर्याय को प्राप्त नहीं हुए हैं और आगे भी त्रसपर्याय को प्राप्त नहीं होंगे, उनको नित्यनिगोद कहते हैं। अन्य मतानुसार जो अभी तक त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं किये हैं, किन्तु भविष्य काल में त्रसपर्याय को प्राप्त कर सकते हैं, उन्हें नित्य निगोद कहते हैं। यह जीव के परिणाम अत्यन्त कलुषित होने के कारण निगोद अवस्था को त्याग कर त्रसअवस्था को प्राप्त करना अत्यन्त दुर्बल हो जाता है।

इतरनिगोद या चतुर्गति निगोद—जो निगोदिया जीव निगोद–अवस्था को त्याग करके त्रसपर्याय को प्राप्त कर पुनः निगोद-अवस्था को प्राप्त करते हैं। उनको इतरनिगोद कहते हैं।

त्रसजीव—

जो त्रस नाम कर्म के उदय से द्वीन्द्रियादि जाति में

उत्पन्न होते हैं, उनको त्रसजीव कहते हैं। त्रस के चार भेद हैं, (१) द्वीन्द्रिय (२) त्रीन्द्रिय (३) चतुरिन्द्रिय (४) पंचेन्द्रिय। यह जीव भय से भयभीत होकर प्राण (रक्षा) के लिये भागते हैं, इसलिये भी इनको त्रस कहते हैं। स्थावरजीव प्रायः भय से भयभीत होकर भाग नहीं पाते हैं।

द्वि-इन्द्रिय-जीव—

जिस जीव में स्पर्शन, रसना इन्द्रिय होती हैं, उन्हें द्वि-इन्द्रिय-जीव कहते हैं। यथा—शंख, लट आदि।

त्रि-इन्द्रिय-जीव—

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, घ्राण इन्द्रिय होती हैं, उन्हें त्रि-इन्द्रिय-जीव कहते हैं, यथा—चींटी, खटमल आदि।

चतुरिन्द्रिय-जीव—

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु इन्द्रिय होती हैं। यथा—मक्खी, भौरा, पतंगा, मच्छर आदि।

पंचेन्द्रिय-जीव—जिस जीव में स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं कर्ण इन्द्रिय होती हैं, उन्हें पंचेन्द्रिय-जीव कहते हैं। यथा—मनुष्य, गाय, पक्षी, देव, नारकी आदि।

स्पर्शन (चर्म), रसना (जिह्वा), घ्राण (नाक), चक्षु (नेत्र), कर्ण (कान) ये पांच इन्द्रियां हैं।

पंचेन्द्रिय जीव के दो भेद—१. असंज्ञी २. संज्ञी

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव—पंचेन्द्रिय सहित, किन्तु मन रहित जीव को असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे–जल सर्प, कुछ तोता, गोह सर्प आदि।

एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव में मन नहीं रहता है। तो भी पंचेन्द्रिय मन रहित जीव को ही असंज्ञी कहते है। एकेन्द्रियादि को नहीं कहते हैं। मन रहित संसारी जीव विशेष उपदेश ग्रहण नहीं कर सकता है।

उनमें हिताहित विचार करने के लिये विवेक नहीं होता है। उनमें सम्यग्दर्शन भी उत्पन्न नहीं हो सकता है। इस लिये वे मोक्ष मार्गी भी उस पर्याय में नहीं बन सकते इस प्रकार के जीव अनंतानंत हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव—पांच इन्द्रिय और मनसहित जीव को संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। यथा–मनुष्य, देव, नारकी, गाय, बैल आदि।

संज्ञी जीव उपदेश ग्रहण कर सकता है, इनमें विशेष विवेक रहता है, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है एवं उसी पर्याय में मोक्ष भी जा सकता है।

आधुनिक विज्ञान केवल पंच स्थावर जीव में वनस्पति कायिक जीव को, जीव सिद्ध कर पाया है, अन्य चार स्थावर

(पृथ्वी कायिक, जल कायिक, अग्नि कायिक वायु कायिक) को अभी तक जीव सिद्ध नहीं कर पाये हैं । कुछ वनस्पति कायिक अत्यंत स्थूल होने के कारण उनको जीव सिद्ध करना सरल है किंतु चार स्थावर जीवों के शरीर इतना सूक्ष्म है की, उनका एक शरीर को हम चक्षु अथवा यंत्र के माध्यम से देखना कठिन हो जाता है । उदाहरण स्वरुप एक जल बिन्दू एक जंतुकायिक जीव नहीं है, किंतु असंख्यात जलकायिक जीवों का शरीर है । तो विचार करिये कि एक शरीर कितना सूक्ष्म है और उस जैविक शरीर में जो क्रिया होती है, उसका वैज्ञानिक लोग अभी तक शोध नहीं कर पाये हैं ।

भारत का स्वनाम धन्य वैज्ञानिक डॉ. जगदीश चंद्र बोस १८०६ में वनस्पति को वैज्ञानिक दृष्टि से जीव सिद्ध करके विज्ञान जगत को चमत्कृत कर दिया जिससे उन्हें नोबल पुरस्कार मिला । परन्तु जैन धर्म में लिखित रुप से ईसा (ख्रिस्त) पूर्व से भी वनस्पति जीव प्रसिद्ध है, इसके साथ-साथ अन्य चार प्रकार के स्थावर का वैज्ञानिक दृष्टि से वर्णन है । इससे सिद्ध होता है कि जैन धर्म केवल प्राचीन नहीं है, परन्तु एक प्रामाणिक वैज्ञानिक धर्म है । विज्ञान में जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान में जो वर्णन है, उससे बहुत ही विस्तृत एवं प्रमाणिक वर्णन जैन धर्म में

है। वैज्ञानिकों को शोध करने के लिए जैन धर्म का जीव विज्ञान सर्च लाईट के समान कार्य कर सकता है।

प्रायः जीव की उत्क्रान्ति एकेंद्रिय से लेकर द्विन्द्रीय, द्वींइन्द्रिय से त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय चतुरिंद्रिय से पंचेंद्रिय, होती है परन्तु अनेक जीव सीधे एकेंद्रिय से पंचेंद्रिय भी बन सकता है और पंचेंद्रिय भी जघन्य कार्य के कारण एकेन्द्रिय बन सकता है तथा पंचेन्द्रिय अध्यात्मिक उत्क्रांति के माध्यम से भगवान भी बन सकता है। भुमिका एक जीव की उत्क्रांति की अपेक्षा डॉ. रविन का उत्क्रांत जीव सिद्धांत कुछ अंश से सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं है। क्योंकि वह संपूर्ण एक प्रकार जीव जाति परिवर्तित होकर दूसरी ऊच्च जीव जातिरुप परिणमन करना मानता हैं। उनके सिद्धांत के अनुसार उत्क्रांति ही उत्क्रांति नहीं है। परन्तु उत्क्रांति के साथ-साथ अवक्रांति होती है।

जीव संबंधी शोध करने के लिए वैज्ञानिकों को गोमट-सार, जीव कांड, धवला, सिद्धांत शास्त्र, द्रव्य संग्रह, तत्वार्थ सूत्र आदि ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिये।

पुद्गल द्रव्य का धर्म—

फास रस गंध वण्ण पुरण गलण येव ।
सद्द छाया प्पकास पुग्गल दव्वाणं धम्मं ।।

अर्थ—जिस द्रव्य में स्पर्श-रस, गंध-वर्ण होते हैं और जो पूरण -गलन रुप होता है । (पूरण अर्थात् मिलना, गलन अर्थात् बिछुड़ना) और जो शब्द-छाया-प्रकाश रुप परिणमन करता है, उसको पुद्गल कहते हैं । दृश्यमान समस्त जगत् पुद्गल ही है । जिस को छूकर जाना जाता है, देखकर जाना जाता है, चखकर जाना जाता है, सूँघकर जाना जाता है, और सुनकर जाना जाता है, वह समस्त द्रव्य पुद्गल ही है ।

अप, तेज, वायु, अग्नि आदि पुद्गल ही हैं । विज्ञान इस को Element कहता है ।

पुद्गल दो प्रकार का है—१. अणु, २. स्कंध ।

१. **अणु**—पुद्गल का अविभाज्य प्रदेश जो कि पुनः कोई भी प्रक्रिया से खंडित नहीं हो सकता है एवं जिसका आदि–मध्य–अन्त एक ही है और जो अग्नि से जलता नहीं है, पानी से गीला नहीं होता है, किसी यंत्र के माध्यम से अथवा चक्षु से दिखाई नहीं देता है, उसे अणु कहते हैं । परमाणु जब मंद गति में गमण करता है ।

तब एक समय में एक प्रदेश गमन करता है और जब तीव्र गति से गमन करता है, तब एक समय में चौदह राजू गमन कर सकता हैं। मध्यम गति में अनेक विकल्प है। अणु जब गमन करता है, तब उसकी गति को कोई भी वस्तु या यंत्रादि भी नहीं रोक सकता है।

एक राजू अर्थात् असंख्यात् योजन है। जिसको वैज्ञा- दृष्टि से असंख्यात प्रकाश वर्ष कह सकते हैं।

२. **स्कंध**—एकाधिक परमाणु जब उपयुक्त–योग्य रुक्षत्व (ऋण) एवं स्निग्ध (धन) गुण के कारण से बंधते हैं, तब स्कंध उत्पन्न होता है। सूक्ष्म अवगाहनत्व गुण के कारण एवं विशेष बंध प्रक्रिया के कारण संख्यात-असंख्यात-अनंत या अनंतानंत परमाणु बनने के बाद भी चक्षु इन्द्रिय के अगोचर हो सकते हैं। पंचेन्द्रियों के द्वारा गृहित समस्त पुद्गल स्थूल स्कंध ही हैं। कुछ सूक्ष्म स्कंध को इन्द्रिय के माध्यम से भी नहीं देख सकते हैं।

वैज्ञानिक लोग कुछ वर्ष पूर्व प्रकाश विद्युत आदि को द्रव्य रहित केवल शक्ति मानते थे परन्तु वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक आइनस्टीन आदि ने सिद्ध किया है कि जहाँ पर भौतिक शक्ति है, वहाँ भौतिक द्रव्य है जहाँ पर भौतिक द्रव्य रहेगा वहाँ भौतिक शक्ति रहेगी। (एक सैकण्ड के असंख्यात भाग को एक समय कहते हैं।)

इसको सिद्ध करने वाला आईनस्टीन का सूत्र है। $E=MC^2$ परंतु जैनधर्म प्रकाश, विद्युत, उद्योत (चन्द्र किरण, सूर्य किरण) अंधकार आदि को पुद्गल की पर्याय प्राग् ऐतिहासिक काल से ही मान रहा था। विज्ञान जो आक्सीजन, हाईड्रोजन, आदि १०५ या ८५ मौलिक तत्व मानता है वह वस्तुतः एक पुद्गल द्रव्य ही हैं। क्यों कि उनसे स्पर्श-रस, गंध, वर्ण समान गुण पाये जाते हैं। विज्ञान जिसको वर्तमान अणु मानता है वह जैनसिद्धान्त की अपेक्षा स्थूल स्कंध ही है जिसमें अनंतानंत परमाणु मिले हुये है। वैज्ञानिक लोग परमाणु को अविभाज्य मानते हुये भी उनके द्वारा माना हुआ परमाणु पुनः पुनः अनेक विभाग में विभाजित होते जा रहा है। इस से सिद्ध होता है कि उनका सिद्धान्त अपरिवर्तित पूर्ण सत्य सिद्धान्त नहीं है।

अन्तरंग एवं बहिरंग कारण अर्थात् वातावरण के कारण पुद्गल में विभिन्न परिवर्तन होता रहता है। पुद्गल शुद्ध परमाणु रुप परिणमन होकर भी पुनः अशुद्ध पर्याय रुप में परिणमन कर सकता है। भौतिक वस्तु की ठोस अवस्था, तरल अवस्था एवं वाष्प अवस्था पुद्गल की पर्याय ही हैं। पुद्गल में जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण एक क्षण में हैं, अन्य क्षण में उनका स्पर्शन, रस, गंध, वर्ण अन्य भी हो

सकता है, जैसे—कच्चा आम का वर्ण हरा, स्पर्श कठोर, रस तीता व खट्टा, गंध खट्टी गंध (असुरभि गंध) और वही आम जब पक जाता है तब वर्ण-पीला, स्पर्श-नरम, रस-मीठा और गंध-सुगंधित हो जाती है। इसी प्रकार पुद्गल वर्ण से वर्णान्तर, रस से रसान्तर, स्पर्श से स्पर्शान्तर, गंध से गंधान्तर होकर विभिन्न वैचित्र पूर्ण अवस्था विशेष को प्राप्त होता रहता है।

आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक जगत में जो शोध हुआ है और शोध हो रहा है, उसका क्षेत्र प्रायः पुद्गल ही है। विद्युत्, अणुबम, रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकार्डर, कम्प्यूटर, टेलीफोन, सिनेमा आदि केवल पुद्गल की ही देन है। पुद्गल में भी अनंत शक्तियाँ निहित हैं। पुद्गल जितना शुद्ध से शुद्धतर होता है, उतनी उसकी शक्तियाँ अर्जित होती जाती हैं। वैज्ञानिको को पुद्गल सम्बन्धी शोध करने के लिये तत्वार्थ सूत्र का पञ्चम अध्याय, प्रवचन सार, पंचास्तिकाय, आदि ग्रन्थ बहुत बड़ा अवलम्बन हो सकते है।

धर्म द्रव्य का धर्म—

अमुत्त णिञ्च सुद्धं लोयायासं पमाण सिद्धम्।
गई परिणयाणं जीव रुवीणं गमणे णिमित्त धम्मम्॥

धर्मद्रव्य अमूर्तिक है। नित्य शुद्ध है, लोकाकाश

प्रमाण है । गति परिणित जीव एवं पुद्गलों को गमन करने में उदासीन निमित्त होता है ।

विश्व में जीव और पुद्गल गमनागमन रुप क्रिया करते हैं, उस गमनागमन क्रिया के लिए एक माध्यम चाहिए उस माध्यम रुप द्रव्य को धर्मद्रव्य कहते है । यहाँ धर्मद्रव्य का अर्थ पुण्य रुप क्रिया या आचरण नहीं है परन्तु यह एक पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त अभौतिक, अमूर्तिक नित्य, शुद्ध असंख्यात प्रदेशीवाला एक अखण्ड द्रव्य है ।

गइ परिणयाण धम्मो पुग्गल जीवाण गमण सहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंताणेव सो णेई ।।

As water assists the novement of moving fish so Dharma assists the novemet of moving Pudgala and Jiva but Dharma itself does not nove. But the (Pudgala and Jiva which) do not nove, the Dharma does not help to nove them.

जैसे गमन करती हुई मछली को पानी गमन करने में सहायक होता है परंतु पानी जबरदस्ति मछली को गमन नहीं करवाता है, उसी प्रकार गमन करते हुए जीव-पुद्गल द्रव्य को उदासीन निमित्त बनता है ।

जिस प्रकार स्वशक्ति से गमन करती हुयी रेल के लिए रेल की पटरी की परम आवश्यकता होती है

रेल की पटरी के बिना रेल नहीं चल सकती हैं उसी प्रकार धर्म द्रव्य गति क्रिया के लिये नितांत आवश्यक है। विश्व की समस्त स्थानांतरित रुप क्रिया (एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये गमन) बिना धर्म द्रव्य की सहायता से नहीं हो सकता है यहाँ तक की श्वासोच्छ्वास के लिये, रक्त संचलन के लिये, पलक झपकने के लिये अंग-प्रत्यंग संकोच विस्तार करने के लिए तार बेतार के माध्यम से शब्द भेजने के लिये रेडियो, टी. वी., सिनेमा आदि में संवाद एवं चित्र भेजने के लिये, देखने के लिये एवं सुनने के लिये गृह से गृहान्तर तक संवाद चित्र भेजने के लिए सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र आदि के गमनागमन के लिये धर्म द्रव्य की सहायता नितांत आवश्यक है। धर्म द्रव्य के अभाव में ये क्रियायें हो नहीं सकती हैं।

धर्म द्रव्य के साथ वैज्ञानिक जगत के इथर कुछ हद तक समान मान सकते है परंतु जैनधर्म में जो तथ्य पूर्ण वर्णन है वह वर्णन वैज्ञानिक जगत में इथर का नहीं पाया जाता है। इथर का शोध अभी हुआ है किन्तु धर्म द्रव्य का वर्णन जैनधर्म में प्राचीन काल से है, धर्म द्रव्य को विशेष जानने के लिये द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय, मोक्ष-शास्त्र का पंचम अध्याय देखना चाहिये। धर्म द्रव्य का वर्णन जैन दर्शन में ही है अन्य दर्शन में नहीं है।

अधर्म द्रव्य का धर्म—

अमुत्त णिच्च सुिद्ध' लोयायासं पमाणं सिद्धम् ।
ट्ठिति परिणयाणं जीव रुवोणं ट्ठिदि णिमित्तमधम्म ।।

अर्थ—अधर्म-द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य, शुद्ध है—लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है । जिस समय में जीव एवं पुद्गल ठहरते हैं, उस समय अधर्म द्रव्य ठहरने के लिये उदासीन निमित्त कारण बनता है ।

यहाँ अधर्म का अर्थ पाप क्रिया नहीं हैं । परंतु अमूर्तिक लोकाकाश व्यापी एक अखण्ड शुद्ध द्रव्य है । जैसे गमन करते हुए पथिक वृक्ष की छाया में बैठता है तब छाया ठहरने के लिये उदासीन कारण बनती है । जैसे-रेल को ठहराने के लिये स्टेशन की रेल पटरी सहायक होती है । जैसे-बैठने के लिये कुर्सी, पाटा, चटाई, आदि सहायक होती है, किन्तु कुर्सी आदि जबरदस्ती मनुष्य को पकड़कर नहीं बैठाती । इसलिये उदासीन शब्द कहा है जो कि महत्त्व का है ।

अधर्म द्रव्य के अभाव से स्थिर रहने रुप क्रिया नहीं हो सकती है, इसके अभाव से विश्व के सम्पूर्ण जीव एवं पुद्गल अनिश्चित एवं अव्यवस्थित रुप से सर्वदा चलायमान ही रहेगें । टैबुल के ऊपर पुस्तक रखने पर दूसरे समय में

पुस्तक वहां पर नहीं रहेगी। गाडी को रोकने पर भी गाडी नहीं रूकेगी, कोई भी व्यक्ति कुछ निश्चित समय के लिये एक ही स्थान में खड़ा या बैठा नहीं रह सकता हैं। यहाँ तक की सम्पूर्ण विश्व यदृच्छाभाव से यत्र तत्र फैलकर अव्यवस्थित हो जायेगा और वर्तमान विश्व का संगठन समरचना है, वह नहीं रह सकती है। शरीर का भी जो संगठन है, वह भी फैलकर के विस्फोट होकर यत्र-तत्र बिछुड जावेगा।

आधुनिक विज्ञान की अपेक्षा जो केन्द्राकर्षण शक्ति Gravitational foru. है उसके साथ अधर्म द्रव्य की कुछ सदृश्यता पायी जाती है। परंतु धर्मद्रव्य का जो सठीक वैज्ञानिक सूक्ष्म परिभाषा है, वह केन्द्राकर्षण शक्ति में नहीं है।

इसके बारे में विशेष जानने के लिये द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

अधर्म द्रव्य का वर्णन जैनदर्शन में ही है, अन्य दर्शनों में नहीं है।

आकाश द्रव्य का धर्म—

अमुत्त णिच्च सुद्धं सव्व वापि महायादव्वम्।
सग-पर ओगास दाणं आगास दव्वाणं धम्मन्॥

आकाश द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य शुद्ध है, सर्व व्यापि है, सब से बड़ा द्रव्य है, स्व-पर को अवकाश (स्थान) देना इस का धर्म हैं ।

आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशी, सर्व व्यापि, सब से बड़ा द्रव्य है । अन्य पुद्गल आदि पांच द्रव्य इस आकाश के जिस मध्य भाग में रहते है उसे लोकाकाश (विश्व) कहते है । लोकाकाश केवल असंख्यात प्रदेशी हैं । आकाश अमूर्तिक होने के कारण इसका भाग (टुकड़ा) नहीं हो सकता है । तो भी जहाँ पर अन्य-अन्य द्रव्य पाये जाते हैं उसको लोकाकाश तथा शेष भाग को अलोकाकाश व्यवहार चलाने के लिए कल्पित किया गया हैं आकाश (Spaw) अन्य द्रव्य से रहित एक शून्य खोखलापन नहीं हैं परन्तु वह स्वयं अस्तित्व, बस्तुत्व अपूर्त आदि अनंत गुण सहित एक वास्तविक द्रव्य हैं । प्रत्येक द्रव्य के रहने के लिए यह द्रव्य सहायक होता है । इसके अभाव से रहना असम्भव हो जाता है । कुछ दर्शन आकाश को मानते हैं कुछ इसको नहीं मानते हैं । विज्ञान अभी जिस प्रकार जैन धर्म (दर्शन) में वर्णन है उसी प्रकार मानता हैं । लोकाकाश के तीन भेद हैं । ऊर्ध्व लोक (स्वर्ग लोक) मध्य लोक (जिसमें भारत, एशिया, पृथ्वी, जम्बूद्वीप,

लवरण समुद्र आदि असंख्यात द्वीप समुद्र हैं) अधोलोक (नरकलोक) आकाश में पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, निहारिका आदि रहते हैं।

काल द्रव्य का धर्म—

अमुत्त रिगच्च सुद्ध पात्तेय लोयाप्पदेसे ठिटदं ।
सग पर परिरगयारगं रिगमित्तं काल दव्वस्स धम्मं ॥३१॥

अर्थ—काल द्रव्य अमूर्तिक, नित्य, शुद्ध एवं लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में स्वतन्त्र-स्वतन्त्र अवस्थित है। काल द्रव्य स्वयं के परिरगमन के लिए एवं जीव–पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश के परिरगमन के लिये निमित्त सहायक होता है।

काल के दो प्रकार—(१) निश्चय काल (२) व्यवहार काल।

(१) निश्चय काल—रत्नों की राशि की तरह स्वतन्त्र रूप से लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में स्थित होने वाले असंख्यात कालारगु निश्चय काल द्रव्य हैं।

(२) व्यवहार काल—सूर्य, चन्द्र आदि के गमन के काररग जो दिन, रात, ऋतु, अयन, घड़ी, घण्टा आदि जो व्यवहार होता है उसको व्यवहार काल कहते हैं। अढ़ाई द्वीप में सूर्य, चन्द्र के गमन के काररग व्यवहार काल है। स्वर्ग, नरक में व्यवहार काल नहीं होने पर भी यहां अर्थात्

मध्यलोक की अपेक्षा वहाँ का व्यवहार चलता हैं । परन्तु निश्चय काल स्वर्ग-नरकादि सम्पूर्ण लोकाकाश में विद्यमान हैं । प्रत्येक द्रव्य में जो उत्पाद-व्यय आदि शुद्ध परिणमन होता है उसके लिये भी काल द्रव्य चाहिये काल द्रव्य के अभाव से परिणमन का अभाव हो जायेगा जिससे प्रत्येक द्रव्य कूटस्थ हो जायेगा, अर्थात् अपरिवर्तनशील हो जायेगा। कूटस्थ के कारण कोई भी कार्य नहीं हो सकेगा ।

कुछ दार्शनिक केवल व्यवहार काल को मानते हैं और निश्चय काल के सद्भाव का निषेध करते हैं किन्तु निश्चय काल के अभाव से व्यवहार काल भी नहीं हो सकता है । क्योंकि प्रत्येक वस्तु प्रतिपक्ष सहित होते हैं अर्थात् व्यवहार का प्रतिपक्ष, निश्चय भी होना चाहिये । वर्तमान में वैज्ञा-निक लोग इसको (Time Substances) कहते हैं ।

विश्व संरचना के लिये जीव का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण हैं । जीव शाखा है । दृष्टा है, कर्त्ता है, भोक्ता है, प्रभू है, विभू है । जीव बिना समस्त विश्व श्मशान के समान सन्नायमय चैतन्य रहित है । द्वितीय महत्त्वपूर्ण भूमिका पुद्गल द्रव्य का है विश्व के संचालन में जितना जीव का हाथ है उतना ही हाथ पुद्गल का भी है। विश्व की समस्त भौतिक संरचना पुद्गल से होती है । विश्व को गृह मानने

से गृह का मालिक जीव है। एवं गृह का निर्माण पुद्गल से होता है । धर्म द्रव्य आने वाले पथिक के लिये मार्ग का काम करता है तो अधर्म द्रव्य पथिक के लिये स्टेशन है । काल पुरातन, पुरातन को मिटाकर नवीनीकरण के लिये सूत्रधार है तो आकाश सबको विश्राम देने के लिए सहायता करता है । इस प्रकार विश्व के लिये छह द्रव्य परस्पर को सहयोग देकर अनादि से सह-अवस्थान कर रहे है एवं करती रहेगी ।

विश्व शाश्वतिक होने के कारण विश्व में स्थित संपूर्ण द्रव्य भी शाश्वतिक है । उनमें परस्पर सहकार से परिणमन होता रहता है। जैन धर्म यह स्वाभाविक विश्व एवं द्रव्यों को मानता है एवं जैन धर्म वस्तु स्वभाव धर्म होने से विश्व जैसे स्वाभाविक एवं अनादि-अनंत हैं। ऐतिहासिक शोध के अकृतिमअभाव से कुछ वर्ष पूर्व कुछ ऐतिहासिक विद्वान एवं दार्शनिक विद्वान जैनधर्म को अर्वाचीन मानते थे। कोई जैन धर्म को हिन्दू धर्म की शाखा, कोई बौद्ध धर्म की शाखा मानते थे, कोई जैन धर्म के संस्थापक महावीर या पार्श्वनाथ भगवान को मानते थे । कोई-कोई प्राचीन सिद्ध करने के लिए आदिनाथ (ऋषभनाथ) भगवान को मानते थे । परंतु जैन धर्म के संस्थापक अर्थात् धर्म का प्रारम्भ करने वाले नहीं हो सकते । क्योंकि जैन धर्म एक प्राकृतिक (स्वाभाविक) धर्म हैं ऋषभदेव-पार्श्वनाथ-महावीर या अन्यान्य

जितने भी तीर्थंकर हुये है, गणधर हुये है, आचार्य हुये है वे सब धर्म में आने वाले विकृति-मिथ्या मत को अंध-विश्वास को दूर करके धर्म प्रचारक–प्रसारक हैं। किसी कारण से धर्म में आने वाले पतन का उत्थान करने वाले हैं। ऐसे तीर्थंकर अभी तक अनन्त २४ तीर्थंकर के रूप में हुये हैं और भविष्यत् में २४ तीर्थंकर प्रचारक–प्रसारक होंगे। जैसे आकाश को कोई तैयार नहीं कर सकता है। किन्तु आकाश के विषय में जान सकता है, पुस्तक लिख सकता है। उसके बारे में व्याख्या कर सकता हैं। उसी प्रकार जैन धर्म के संस्थापक नहीं हो सकते हैं परन्तु उसको जान सकते है उसका पुनर्उद्धार कर सकते है। इसलिए जैन धर्म, हिन्दू धर्म या बौद्ध धर्म की शाखा नहीं है, नहीं है। जैन धर्म को, अन्य धर्मों की शाखा मानना, अपनी योग्यता का परिचय देना मात्र है। किन्तु इससे कभी सत्य को आंच नहीं लगती ! न कभी आगे लगेगी।

———

चतुर्थ परिच्छेद

आत्म धर्म

अहिंसादि पांच धर्म

अभी तक हम लोगों ने वस्तु स्वरूप धर्म के बारे में अध्ययन किया। और वस्तु स्वभाव धर्म में सामान्य रूप से प्रत्येक द्रव्य के बारे में अध्ययन किया। यहाँ से लेकर आगे केवल आत्म संबंधी अध्ययन करेगे। आत्मा में आगे लिखित समस्त धर्म पाये जाने के कारण अन्य द्रव्य में नहीं पाने जाने के कारगा वे सब धर्म आत्म धर्म है आत्म धर्म सामान्य से एक होने पर भी पर्याय अपेक्षा, परिभाषा अपेक्षा, निमित्त अपेक्षा अवस्था अपेक्षा भिन्न-भिन्न है।

(१) अहिंसा (२) सत्य (३) अचौर्य (४) ब्रह्मचर्य (५) अपरिग्रह। ये पांच आत्मा के धर्म हैं। इन पांचों धर्म को प्रत्येक धर्म कुछ अंश में एवं कुछ दृष्टि कोण से मानते हैं परंतु जैन धर्म में जिस प्रकार सांगोपांग वर्णन है उष प्रकार अन्य धर्मों में कम पाया जाता है।

अहिंसादि को पूर्ण रूप पालन करना महाव्रत कहा जाता है और महाव्रत जो पालन करते हैं उन्हें साधु कहते हैं। पंच महाव्रत यथा—(१) अहिंसा महाव्रत (२) सत्य महाव्रत (३) अचौर्य महाव्रत (४) ब्रह्मचर्य महाव्रत (५) अपरिग्रह महाव्रत। साधारणतः गृहस्थ नागरिक पूर्ण रूप से पालन करने के लिये असमर्थ होते हैं क्योंकि परिवार चलाने के लिये एवं समाज में रहने के लिये कुछ न कुछ आरंभ करना होता है एवं परिग्रह रखना होता है इसलिये श्रावक (आदर्श नागरिक) अंशिक रूप से समाज के अविरोध, धर्म के अविरोध अणुरूप में पालन करते हैं। पांच व्रत के नाम अथवा कर्म—(१) अहिंसानुव्रत (२) सत्यानुव्रत (३) अचौर्याणुव्रत (४) बह्मचार्याणुव्रत (५) परिग्रहपरिमाणुव्रत। ये पांच अणुव्रत समस्त जीवन यापन करने के लिये, स्वस्थ्य परिवार के लिये आदर्श समाज के लिये, उन्नत राष्ट्र के लिये अनिवार्य हैं। इनके बिना व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अस्तव्यस्त अनुशासनविहीन शांति, सुख, प्रेम, मैत्री, संगठन से रहित हो जाएगा। धर्म केवल एक बाह्य आडम्बर, मिथ्या परंपरा, रुढो क्रिया कांड एवं काल्पनिक परलोक सुख के लिये नहीं है। धर्म से तो सदा, सर्वदा, सर्वत्र, सर्व को सुख शांति मिलती है। जिस धर्म में या राष्ट्र में यह पांच व्रत नहीं

है वह धर्म या राष्ट्र टिक नहीं सकता है। निश्चय से अवनति एवं विलिनता को प्राप्त हो जावेगा।

अहिंसा धर्म—

अकषाय भाव यत्र न स्व पर पीडनम्।
सा अहिंसा अमृत माता सर्व धर्म प्रधानम्॥

जहाँ पर मानसिक दुर्विचार नहीं है और स्व-पर पीडन नहीं है वहाँ पर अहिंसा रूपी अमृत माता निवास करती है। अहिंसा सम्पूर्ण में प्रधान धर्म है।

यदि मन में किसी को कष्ट देने की भावना है और किसी कारण वश कष्ट नहीं दे पाये तो भी हिंसा का पाप लगेगा ही। जैसे एक डाकू दूसरों को फाईरिंग करके धन लूटना चाहता था परन्तु निशान चूकने कारण सामने वाले व्यक्ति को निशान नहीं लगा और वह बच गया तो भी न्यायधीश उस चोर को दण्ड देगा, क्योंकि उसका मारने का इरादा था। और एक उदाहरण लीजिये—एक धींवर मच्छली पकड़ने के लिये पानी में जाल डालता है किन्तु दिन भर बैठने पर भी मछली न पकड़े जाने पर भी हिंसा या अपराध का भागी होगा ही। इसलिये इस श्लोक में अहिंसा के लिये प्रथम एवं प्रधान शर्त अकषाय भाव कहा है।

यदि अन्तरंग में कषाय भाव अर्थात् दूषित परिणाम नहीं है परन्तु कारण वशात् कोई जीव का घात हो जाने पर भी हिंसा का या अपराध का भागी नहीं होगा जैसे—महामुनि चार हाथ जमीन नीचे देखते चलते समय कोई क्षुद्र प्राणी अकस्मात् पैर के नीचे दबकर मर जाने पर भी महामुनिराज दोष—अपराध के भागी नहीं है क्योंकि मन में जीवों की विराधना मुझ से नहीं हो इस भाव को मन में रहते हुये अपने तरफ से तो सावधान (प्रयत्न) पूर्वक चल रहे थे, अथवा जैसे एक कृषक खेत में कार्य करता है! हल जोतते समय अनेक जीवों का घात होता है तो भी उसे विशेष हिंसा का दोष नहीं लगेगा। किन्तु उद्योग जनित दोष लगेगा, क्योंकि उसके परिणाम जीव मारने का नहीं है किन्तु अनाज उत्पन्न करने का हैं। अथवा दयालु प्रामाणिक डॉक्टर रोगी को निरोगी बनाने के लिये ऑपरेशन करता है दैव से और आयु पूर्ण होने के कारण रोगी का मरण होने पर भी डॉक्टर को हिंसा का दोष नहीं लगेगा क्योंकि डॉक्टर के परिणाम रोगी को बचाने के होने से न कि मारणे के।

जब कषाय भाव उत्पन्न होता है उस समय ही स्वात्मा की हिंसा हो जाती हैं भले फिर वह स्वयं का या अन्य की द्रव्य हिंसा करें या न करें।

आत्मघात करना स्वकीय द्रव्य हिंसा एवं भाव हिंसा है, इसलिये आत्मघात करना सब से बड़ी हिंसा हैं। दूषित मनोभाव से दूसरों को काट देने पर यदि कष्ट प्राप्त करने वाले जीव में यदि कलुषित परिणाम नहीं हुए तो उसकी केवल द्रव्य हिंसा अर्थात् शरीर को ही कष्ट मिलेगा। परंतु कष्ट देने वाले को द्रव्य हिंसा के साथ-साथ भाव हिंसा भी होगी।

कष्ट पाने वाला स्वर्ग–मोक्ष भी जा सकता हैं किन्तु कष्ट देने वाला महा पाप बंध करके नरकादि दुर्गति को प्राप्त होगा। इसलिये कष्ट सहन आत्मोन्नति के लिये अमृत तुल्य हैं। और कष्ट देना विष तुल्य है। इस श्लोक में अहिंसा कोअमृत माता बताया हैं क्योंकि जैसे माता प्रेमभाव से संतान की रक्षा करती हैं उसी प्रकार अहिंसा माता सम्पूर्ण जीव जगत की रक्षा करती हैं, अमृत पान करने से जैसे जरा–मरण व्याधि रूपी रोग कष्ट नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार अहिंसा से हिंसा, युद्ध, कलह, शिकार, परपीड़न, आदि कष्ट नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक द्रव्य जीना चाहता है, सुखी होना चाहता है एवं सुरक्षित रहना चाहता है। कोई भी मरने के लिये, कष्ट प्राप्त करने के लिये, असुरक्षित नहीं रहना चाहता है। एक जीव को सम्पूर्ण लोक की विभूति देकर भी उससे प्राण चाहेगें तो वह प्राण नहीं देगा। इससे

सिद्ध होता है कि एक जीव का मूल्य तीन लोक की विभूति से भी अधिक हैं। जो एक जीव की रक्षा करता है वह मानव तीन लोक की विभूति का दान देता हैं। इसलिये भगवान महावीर ने बताया कि सर्व धर्म का मूल आधार अहिंसा है अहिंसा को दृढ़ करने के लिये निर्मल करने के लिये एवं वृद्धि करने के लिये अन्य धर्म परिचारक।

"परवहा आद वहा होई"

पर वध आत्मा वध ही है जो दूसरों को कष्ट देता है, वह स्वयं को ही कष्ट देता हैं।

जीव जिरगवर जे मुरगहि जिरगवर मुणहि।
ते सम भाव पर टिया लहु निर्वारग लहहि॥

जो प्रत्येक जीव को जिनेन्द्र भगवान के समान मानता है एवं जिनेन्द्र भगवान को जीव के बराबर मानता है वह समभाव को प्राप्त होकर शीघ्र ही निर्वारग को प्राप्त हो जाता है।

द्रव्यत:—सामान्य जीव एवं अरिहंत सिद्ध भगवान में कोई–भेद नहीं है क्योंकि "सव्वे सुद्धा दु सुद्धरगाया" शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि से समस्त जीव सिद्ध सदृश्य है। इसलिये जो कोई भी जीव को कष्ट देता है वह साक्षात परमात्मा को कष्ट देता है। जो जीवों की सेवा करता है वह जिन सेवा करता है इसलिये ईशामसीह ने बताया था की मानव सेवा ही भगवान सेवा है।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मैं मैत्री की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ ।।
(युजुर्वेद)

इन्द्रियाणाम् निरोधेन राग द्वेश क्षयेण च ।
अहिंसत्वं च भूतानाम मृतत्त्वाय कल्पते ।।
(मनुस्मृति)

दुष्ट इन्द्रियों की दुप्रवृत्ति के निरोध से रागद्वेष के क्षय से और अहिंसा तत्त्व से जीवों को अमृत तत्त्व की प्राप्ति होती है ।

अहिंसापरमो धर्मस्तथाऽहिंसा परोदमः ।
अहिंसा परमं दान अहिंसा परमं तपः ।।
(महाभारत)

अहिंसा परमो यज्ञस्तक्षाऽहिंसा परम फलं ।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ।।
(महाभारत)

अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा परम दया है, अहिंसा परम दान है, अहिंसा परम् तप है ।

अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है । अहिंसा परम सुख है ।

हिंसा के ४ भेद—(१) आरंभी (२) उद्योगी (३) विरोधी (४) संकल्पी ।

आरंभी हिंसा—गृहस्थ सम्बन्धी कार्य में जो हिंसा होती है उसको आरंभी हिंसा कहते है ।

विरोधी हिंसा—आत्म रक्षा के लिये, देश रक्षा के लिये, धर्म रक्षा के लिये, शरणागत की रक्षा करने के लिये, असहाय स्त्री एवं बालक की रक्षा के लिये, धर्मनीति के अनुसार विरोधियों के साथ युद्ध करने से जो हिंसा होती है उसको विरोधी हिंसा कहते हैं ।

संकल्पी हिंसा—दूषित भावना सहित दूसरे जीवों को मारने का भाव उत्पन्न होना, उसको संकल्पी हिंसा कहते हैं ।

उद्योगी हिंसा—कृषि, वाणिज्य आदि कार्य में जो हिंसा होती है उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं ।

एक आदर्श गृहस्थ नागरिक हिंसा नही करने की भावना होने पर भी आरंभ व्यापारादि करना पड़ता है एवं देश आदि के लिये युद्ध भी करना पड़ता है इसलिये वह उपरोक्त तीन हिंसा—आरंभी, उद्योगी, विरोधी हिंसा से बच नहीं सकता हैं परन्तु संकल्पी हिंसा त्याग करना उसके लिये नितान्त आवश्यक है ।

सत्ता, धन-सम्पत्ति ख्याति-कीर्ति या द्वेष आदि से जो एक देश पर आक्रमण करता है वह संकल्पी हिंसा है ।

मांस के लिये मत्स्य-पालन करना, मुर्गी-पालन करना, बूचड-खाना खोलकर जीवों का घात करना संकल्पी हिंसा हैं रेशमी वस्त्र के लिये, रेशमी कीड़ों को जिन्दा उबालना संकल्पी हिंसा में ही गर्भित है।

अहिंसा यदि अमृत है तो हिंसा विष है। अहिंसा प्रकाश है तो हिंसा अन्धकार है। अहिंसा से अभिवृद्धि प्रेम, विश्व मैत्री, संगठन हो सकता है। केवल नारेबाजी, नेतागिरी, आक्रमण प्रवृत्ति से, अनीति अत्याचार से शोषण नीति से शांति स्थापित नहीं हो सकती है। जैसे—मनुष्य को जिन्दा रहने के लिये अधिकार है उसी प्रकार पशु आदि प्राणियों को भी है। महावीर भगवान ने कहा था (Live and Let Live) (जीवो और जीने दो) जीना जैसा तुम्हारा अधिकार है उसी प्रकार दूसरों को जीने देना तुम्हारा कर्त्तव्य है। इसलिये प्रत्येक मानव एवं राष्ट्र के कर्णधारों को चाहिये कि मांस के लिये या अन्य कोई स्वार्थ सिद्धि के लिये किसी भी प्रकार की हिंसा न करें।

स्वामी समन्त भद्र ने स्वयंभू स्तोत्र में कहा है—

"अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परम।"

अहिंसा में, अहिंसा पालन करने वालों के लिये यह सम्पूर्ण जगत पर ब्रह्ममय दिखाई देता है।

कौटिल्य चाणक्य ने बताया है ।

"सज धर्म दया हीनं" दयाहीन धर्म को त्याग करो । इसके साथ उन्होंने बताया है कि जो दया हीन धर्म का त्याग नहीं करता है उसको सुख-शांति-वैभव-मोक्ष-स्वर्ग आदि स्वमेव ही छोड़कर चले जाते है । लिंगायत धर्म के सर्वज्ञ कवि ने कहा है—

मैं अहिंसामय जैन धर्म को सिर पर धारण करता हूँ । जो हिंसामय धर्म है उसे चूल्हा में डाल कर जला दो ।

हिंसा करने वाला परभव में अपघात से मरता है । नरकतिर्यंच गति में जन्म लेता है । यदि कदाचित मनुष्य जाति में जन्म लिया तो वहां पर गर्भ में ही मरण को प्राप्त हो जाता है । जन्म लिया तो अल्पायु में रोग या दुर्घटना या शत्रु प्रहार से मरता है यदि जिन्दा भी रहा तो रोग से, धनाभाव से मानहानि से अंग-उपांग के छेदन-भेदन से अनेक शारीरिक मानसिक दुःखों को सहन करता हैं ।

सत्य धर्म—

हित-मित-प्रिय वचः जीव हित साधकम् ।
स सत्यं आगम वचः स्याद्वाद सहितम् ।।

जो वचन हितकर है, सीमित है, प्रियकर है, जीव के लिये हितकारी है, आगम अनुकूल है और स्याद्वाद सहित है वही वचन सत्य हैं ।

द्रव्यतः सत्य एवं मधुर वचन होते हुए भी यदि कुमार्ग में प्रवृत्त कराता है वह वस्तुतः सत्य वचन नहीं है असत्य वचन है। इसलिये वचन हितकर होना चाहिये। यथार्थ वचन भी अनर्गल प्रवृत्ति से, वाचाल स्वरूप से एवं अयोग्य द्रव्य-क्षेत्र-कालादि में बोलने पर वह वचन सत्य नहीं हैं। क्योंकि वह वचन मित विशेषरण से रहित है। सत्य वचन भी यदि प्रिय नहीं है, कर्ण मधुर नहीं है, मृदु नहीं है और उस वचन से अप्रियता, द्वेष, कटुता पैदा होती हैं तो वह वचन भी सत्य वचन नहीं है। सर्वज्ञ प्रणीत आगम के विरोध वचन भी सत्य वचन नहीं है इसलिये सत्यवादी को आगमानुकूल बोलना चाहिये। आगम के अनुकूल बोलते हुए भी हठ ग्राहिता से स्वार्थ या पंथसिद्धि के लिये अनेकान्त स्याद्वाद को छोड़कर अपेक्षा को दुर्लक्ष्य करके जो बोलता है वह भी बड़ा असत्य हैं।

सत्यं ब्रूयात्पियं ब्रूप्रात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयाद् एव धर्मः सनात्तनः॥

मनुस्मृति।

सत्य बोलना चाहिये प्रिय बोलना चाहिये, सत्य होते हुये भी अप्रिय नहीं बोलना चाहिये। प्रिय असत्य वचन नहीं बोलना चाहिये यह सनातन धर्म हैं।

सांच बराबर तप नही झूठ बराबर पाप ।
जाके हृदये सांच है ताके हृदये आप ।।
(कबीर)

सत्य के बराबर तप नहीं है, झूठ के बराबर पाप नहीं है, जिसके हृदय में सत्य हैं, उसके हृदय में भगवान हैं ।

झूठी गवाह देना, कोर्ट में अन्याय पक्ष को लेकर वकालत करना, दूसरों को ठगने के लिये जाल साँझी वचन कहना आदि असत्य वचन हैं। जो असत्य बोलता है, उसको वर्तमान भव में (मूक) जिव्हाछेदन दण्ड मिलता है। जिव्हा में एवं मुख में विभिन्न रोग होते हैं। तथा उसका कोई विश्वास नहीं करता है और ऐसे असत्यभाषी परभव में मूक बनते हैं।

अचौर्य धर्म—

कषाय भाव योगेन अन्य द्रव्य ग्रहणम् ।
न करोति अचौर्य धर्म सर्वोदय साधनम् ।।

अर्थ—कलुषित भाव से अन्य द्रव्यों को ग्रहण नहीं करना अचौर्य धर्म है। और यह अचौर्य धर्म सर्वतोन्नति के के लिये साधन स्वरूप है।

क्रोध-मान-माया-लोभ-मोह-कामुक आदि भाव से अन्य के द्रव्यों को ग्रहन करना या आत्म द्रव्य को छोड़कर अन्य द्रव्य को स्वीकार करना चोरी है। यदि अन्तरंग में विकार भाव

नहीं है तो पर द्रव्यों का ग्रहण होने पर चोरी का दोष नहीं लगेगा। जैसे शून्यगृह, छोड़े हुये घर में मुनि रहते हैं। हाथ धोने के लिये प्रतिबंध रहित मिट्टी प्रयोग में लाते हैं। प्रासुक झरने का पानी प्रयोग करते हैं तो भी उनको चोरी का दोष नहीं लगता है क्योंकि उनके हृदय में चोरी करने रूप भाव नहीं है। यदि अन्तरंग में कषाय भाव होने पर भी दूसरों की धन सम्पत्ति प्रतिकूल परिस्थिति के कारण चोरी नहीं कर पाया तो भी वह दोष का भागी है। जैसे एक चोर रात्रि में सेंध खोदते समय कोतवाल ने उसको पकड़ लिया, जिससे वह चोरी नहीं कर पाया तो भी न्यायाधीश उसको दोषी साबित करके दण्ड देगा।

केवल डाका डालकर, सेंध बनाकर चोरी करना ही चोरी नहीं है परन्तु अधिक मुनाफा लेना, कम तोल कर देना, अधिक मूल्य की वस्तु में कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना, न्याय पूर्ण सेल टेक्स, इन्कम्टैक्स नहीं देना, श्रमिकों (मजदूरों) का उपयुक्त वेतन नहीं देना, रिश्वत लेना, राष्ट्र के न्याय नीति के विरुद्ध व्यवसाय करना, चावल में कंकड़ मिलाकर बेचना, घी में डालडा मिलाना, डालडा में चर्बी मिलाना आदि चोरी रूप गर्हित पाप हैं।

धन सम्पत्ति मनुष्यों का ग्यारहवाँ प्राण है, जो दूसरों की धन सम्पत्ति हड़प करता है, वह उसका प्राण हर लेता

है। जो अन्याय से धन उपार्जन करता है, उसका धन अधिक दिन तक नहीं रहता है।

अन्याय उपार्जितं धनं दश वर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते तु एकादश वर्षे समूलं च विनश्यति॥

अन्याय से उपार्जित धन १० वर्ष तक रहता है। ग्यारहवें वर्ष में मूल सहित नष्ट हो जाता है।

ह्वेनसांग भारत के विषय में लिखते हैं कि भारत एक समृद्धिशाली देश होते हुए भी कोई घर में ताला नहीं लगाते थे। इस से सिद्ध होता है कि भारत में पहले विशेष चोरी नहीं होती थी। अभी भी कुछ वैदेशिक देश में चोरी कम होती है। परन्तु भारतीय लोग स्वयं को श्रेष्ठ एवं धार्मिक देश की प्रजा मानते हुए भी विचित्र चोरी करते हैं। व्यापारी क्षेत्र में काला बाजारी, भेजाक आदि चोरी के कार्य के साथ-साथ शैक्षणिक, शासकीय, न्यायालय आदि में भी चोरी की ही भरमार है। विद्यार्थियों को शिक्षक ठीक से नहीं पढ़ाते हैं और विद्यार्थी ठीक से नहीं पढ़ते हैं यह कर्तव्य चोरी है। परीक्षा में नकल करना भी चोरी है, रिश्वत लेकर शिक्षा विभागीय अधिकारी एवं शिक्षक आदि विद्यार्थियों को प्रश्न-पत्र पहिले से ही दे देना, अधिक नंबर दे देना, अनुत्तीर्ण विद्यार्थी को उत्तीर्ण करना आदि चोरी है। न्यायालय में रिश्वत लेकर सही को झूठ करना एवं

झूठ को सत्य करना बहुत बड़ी चोरी है, जिससे निर्दोष मारा जाता है, दोष बढ़ता है, नैतिक पतन होता है, एवं सत्य का हनन होता है। प्रायः करके न्यायालय अभी अन्यायालय है, न्यायाधीश अन्यायधीश है, सत्य के नाम से असत्य का ही साम्राज्य चलता है। इसी प्रकार शासकीय नेता वर्ग, ऑफिसर आदि रिश्वत लेकर ही काम करते हैं। परन्तु अपना पवित्र कर्त्तव्य मानकर काम करने वाले बहुत कम हैं। पूंजीपति व्यापारी वर्ग भी मार्केट में वस्तुओं का सार्टेज उत्पन्न करके मनमाना मूल्य बढाकर साधारण प्रजा का शोषण करते हैं। जो रक्त शोषण गला काटने से कुछ कम नहीं है। इससे समाज, देश, राष्ट्र में हाहाकार मच जाता है एवं कुछ साधारण मनुष्य भी चोरी आदि कुकृत्य करने के लिये बाध्य हो जाता है। अतः देश, राष्ट्र की शान्ति के लिये उपरोक्त चौर्य कर्म का त्याग करना प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य है।

चोरी का फल--चोरी करने वालों को चोर कहकर पुकारते हैं, उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते हैं, उसको अपने समीप में, घर में, ग्राम नगरादि में नहीं रखना चाहते हैं, उसका कोई विश्वास नहीं करते हैं, यहाँ तक की माता-पिता भी उस पर विश्वास नहीं करते हैं। उसको राजदंड मिलता है, देश से भी निकाल देते हैं। पर भव में निर्धन,

भिखारी बनता है, कठोर परिश्रम करने पर भी पेट भरना दुर्लभ हो जाता है। दूसरे भव में उसकी धन सम्पत्ति भी अग्नि से, पानी से, भूकंप से, चोरी आदि से नष्ट हो जाती है।

ब्रह्मचर्य धर्म :—

मनसा वचसा काया नव कोटि मात्रेण ।
मैथुन परित्यागं ब्रह्मचर्य महा गुणम् ॥

अर्थ—मन-वचन-काय से कृत-कारित-अनुमोदन रूप नव कोटि से कामुक प्रवृत्ति का त्याग करना ब्रह्मचर्य महा-गुण है।

काम चेतना प्राणी मात्र में एक दुर्दमनीय विकार भाव है। काम प्रवृत्ति से आत्मा की ऊर्जा क्षीण हो जाती है। ऊर्जा क्षीण होने से मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जिससे मनुष्य में उत्साह, धैर्य, ज्ञान-विज्ञान, विवेक, संयम, आदि नष्ट हो जाते हैं। जीवन को ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिये, स्वास्थ्य संपादन करने के लिये आजीवन युवक रहने के लिये, बौद्धिक शक्ति का विकास करने के लिये नयी-नयी प्रज्ञा प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि के समान है।

केवल शारीरिक मैथुन त्याग से ब्रह्मचर्य पूर्ण नहीं होता है, उस के साथ-साथ मन से, काम वासना त्याग, वचन से

काम कथा त्याग, तथा कृत कारित अनुमोदना से मैथुन त्याग करने से ब्रह्मचर्य पूर्ण होता है। जो वीर्य प्राय: ४२ दिन में तैयार होता है, वही वीर्य एक बार के भोग से क्षय हो जाता है। इस से आप लोग अनुमान कर सकते हैं कि अब अब्रह्मचर्य (मैथुन) से कितनी क्षति होती है। उस क्षति को पूर्ण करने के लिये पुन: ४२ दिन चाहिये। "बिन्दु पात ही मरणं" अर्थात् वीर्य स्खलन ही मरण है।

अब्रह्मचर्य का दुष्परिणाम—एक बार भोग के समय में संभोग क्रिया से लब्ध पर्याप्तक नव लक्ष (९ लाख) जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे सरसों से भरा पात्र में एक तप्त लोह खण्ड डालने से सब सरसों जल जाते हैं उसी प्रकार नव लक्ष लब्ध पर्याप्तक पंचेन्द्रिय मनुष्य जीव भस्म हो जाते हैं, यह हुआ द्रव्य जीव हिंसा। द्रव्य हिंसा के साथ में जो मैथुन-भोग भोगने का मानसिक मलीन विचार है वह भाव हिंसा है। इस सारे पाप का फल इस भव में नहीं तो अगले भव में निश्चित भोगना पड़ेगा। इस पाप से छूट नहीं सकता है।

ब्रह्मचर्य का फल—

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि "त्रिलोक्य पूज्य हवई ब्रह्म" तीन लोक में पूज्य ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप से पालन करना सब के लिये संभव नहीं है, तथापि स्वपति से ही संतोष रखना उसमें भी संयमित रूप से केवल योग्य संतान की उत्पत्ति के लिये भोग करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

स्त्री को कम से कम १६ वर्ष तक एवं पुरुष को कम से कम २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहकर विद्या-अध्ययन करना चाहिये। उसके पश्चात् रज एवं वीर्य पक्व हो जाता है। जिस से योग्य बलिष्ठ, तेजस्वी, धर्मात्मा, संतान उत्पन्न होती है। ऋतु स्नान में भोग करना सर्वथा त्यजनीय है। उससे ओज-वीर्य, आयु आदि घटती हैं। अनेक महारोग शरीर में प्रवेश करने लगते हैं। वह रोग वंश परम्परा से आगे चलकर अपने परिवार-संतान के ऊपर गलत प्रभाव डालता है। यदि संतान परम्परा के ऊपर दया-करुणा भाव है तो इन दिनों में भोग नहीं करना चाहिये। ऋतु स्नान से चौथे दिन से १६ दिन तक भोग का समय है। उसमें भी अष्टमी-चतुर्दशी-पूर्णिमा, अमावस्या एवं पर्व आदि दिनों में भोग नहीं करना चाहिये। दिन में भोग करने से आयु क्षीण हो जाती है। अतः दिन में भोग वर्जनीय है। ग्रीष्म ऋतु में भी विशेष भोग नहीं करना चाहिये। और ऋतु स्नान से लेकर १६ दिनों में किया हुआ स्त्री सम्बन्ध ही गर्भ धारण करने का कारण हो सकता है। अतः सोलह दिन

से आगे ऋतु स्नान तक स्त्री सम्बन्ध आयुर्वेद में वर्जनीय है। इस प्रकार संयमित जीवन यापन करने पर कम एवं योग्य संतान होगी। जो कि सर्वगुण सम्पन्न तथा निरोग होगा। वर्तमान में संयमित जीवन के अभाव से ही तेज, (शरीर कांति) वीर्य हीन, अवांच्छित अधिक संतान की उत्पत्ति होती है। जिस से स्वयं माता-पिता एवं सरकार भी चिंतित है। उसका विरोध करने के लिये अनैतिक साधन के माध्यम से जन्म निरोध संस्कार कर रही है। इससे शील को ही तिलांजलि दे दी है। कोई किसी से भोग करने पर गर्भ नहीं रहने के कारण पता नहीं चलता है, जिस से अनैतिकता, कुशीलता, पापाचार, बढ़ रहा है। इसलिये सुखमय जीवन यापन करने के लिये ब्रह्मचर्य अणुव्रत पालन करना सबके लिये परम कर्त्तव्य हो जाता है। ब्रह्मचर्य अणुव्रत भारत की एक प्राकृतिक, वैज्ञानिक, जन्म निरोध प्रणाली है। इसको अपनाने से जन्म निरोध की अर्थात् कुटुम्ब नियोजन प्रणाली तथा अर्थ व्यय सब रुक जायेगा।

जो पर स्त्री गमरण करता है या जो स्व स्त्री से अधिक लम्पटता से भोग करता है वह पर भव में नपुंसक बनेगा। पुरुष बना तो लिंग में अनेक रोग उत्पन्न होंगे। पर भव में तेज हीन, वीर्यहीन, दुर्बल शरीर मिलेगा। और अभी भी अनेक लोग टी० बी० से ग्रस्त दिखते हैं और अनेक चर्म

रोग ब्लड़ दूषित होने से रोगी दिखते हैं। सभी अधिक भोग करने से ही हुये हैं। अतः ऐसे दुःखदायी अवस्था से बचना हो तो ब्रह्मचर्य ही एकमात्र श्रेयस्कर है।

अपरिग्रह धर्म—

अन्तरङ्ग बहिरङ्ग सर्वं परिग्रह त्यागं ।
अपरिग्रह महाव्रतं सर्व सुख दायकम् ॥

अर्थ—अन्तरङ्ग चौदह प्रकार का परिग्रह एवं बहिरङ्ग १० प्रकार का परिग्रह त्याग को अपरिग्रह धर्म कहते हैं। यह अपरिग्रह महाव्रत सर्व सुखदायक है।

अन्तरङ्ग १४ प्रकार का परिग्रह—(१) मिथ्यात्व (२) क्रोध (३) मान (४) माया (५) लोभ (६ हास्य (७) रति (८) अरति (९) शोक (१०) भय (११) जुगुप्सा (१२) स्त्री वेद (Female Sex) (१३) पुरुष वेद (१४) नपुंसक वेद।

बहिरङ्ग १० प्रकार का परिग्रह–(१) क्षेत्र-खेत-जमीन (२) वास्तु-मकान (३) हिरण्य-चांदी (४) स्वर्ण-सोना (५) धन-पशु सम्पत्ति (६) धान्य-अनाज आदि (७) दासी-नौकरानी (८) दास-नौकर (९) कुप्य-वस्त्र (१०) भाण्ड–बर्तन।

परिग्रह का भयंकर परिणाम–जिस प्रकार ग्राह (मगरमच्छ या घडियाल) मनुष्य को पकड़कर जल में

डूबा देता है एवं खा लेता है, उसी प्रकार उपरोक्त २४ प्रकार का परिग्रह जीव को पकड़कर संसार में डूबाकर जन्म-मरणादि दु:ख को देते हैं। सम्पूर्ण ३४३ घन राजू प्रमाण विश्व में स्थित परिग्रह के भेद केवल १० हैं, परन्तु आश्चर्य की बात है कि ३½ हाथ प्रमाण इस क्षुद्र शरीर में २४ परिग्रह हैं। व्यवहार में एक दुष्ट ग्रह के कारण मनुष्य को बहुत ही कष्ट मिलता है। तब जिनके पीछे महादुष्ट २४ परिग्रह लगे हैं, उनको कितना कष्ट मिलेगा विचार करना चाहिये। एक ग्राह (घडियाल) यदि मनुष्य को पकड़कर निगल सकते है तो २४ प्रकार का परिग्रह जीव को पकड़कर नहीं निगल सकते हैं? अर्थात् निश्चय रूप से निगल ही जायेंगे।

मूर्च्छा परिग्रह—बाह्य वस्तु के प्रति जो मूर्च्छा अर्थात् ममत्त्व परिणाम है, वही मुख्य अन्तरङ्ग में मूर्च्छा, ममत्त्व, धन इच्छा होने के कारण वह भी परिग्रह धारी है। तीर्थंकर केवली के समवशरण आदि बाह्य विश्व की सबसे अधिक विभूति होते हुए भी वे परिग्रह धारी नहीं हैं, क्योंकि वे मूर्च्छा ममत्त्व, इच्छा से रहित हैं। इच्छा एक प्रकार अलौकिक अग्नि है। क्योंकि अग्नि को इन्धन मिलने पर ही बढ़ती है, इन्धन के अभाव से अग्नि बुझ जाती है परन्तु यह इच्छा रूपी अग्नि वैभव के अभाव में वैभव को

प्राप्त करने के लिये प्रज्वलित होती है एवं मिलने पर और भी अधिक रूप से प्रखर रूप से प्रज्वलित होती है ।

बढ़त–बढ़त सम्पत्ति सलील मन सरोज बढ़ जाय ।
घटत–घटत फिर न घटे, घटे तो गिर जाय ।।

सम्पत्ति रूपी पाणी जितना–जितना बढ़ता जाता है उतना मन रूपी कमल बढ़ता ही जाता है । परन्तु कमल बढ़ जाने के बाद यदि पानी घट जावे तो उस अनुपात से कमल का नाल कम नहीं होता है, जिसके कारण आधार के अभाव से गिर जाता है । उसी प्रकार मन (इच्छा) जितनी धन सम्पत्ति बढ़ती है, उससे भी अधिक प्राप्त करने के लिये लालायित हो जाता है, किन्तु धन कम होने पर इच्छा कम नहीं होती है, जिससे मनुष्य की इच्छा भंग हो जाती है, जिससे मनुष्य को अकथनीय मानसिक वेदना होती है ।

इच्छा अग्नि है, वैभव घी है, इच्छा रूपी अग्नि को शान्त करने के लिये यदि वैभव रूपी घी डालेंगे तो इच्छा अग्नि शान्त नहीं होगी बल्कि अधिक-अधिक बढ़ती ही जायेगी । इसलिये इच्छा रूपी अग्नि शान्त करने के लिये बाह्य परिग्रह, धन-सम्पत्ति जितना-जितना कम करेंगे उतनी-उतनी इच्छा रूपी अग्नि कम होकर मानसिक शान्ति मिलेगी ।

कनक–कनक ते सौ गुणी, मादकता अधिकाय ।
वे खाय बय राय नर, वे पाय बय राय ।।

कनक—धतूरा (विषाक्त फल) से कनक-सुवर्ण (धन सम्पत्ति) मादकता में सौ गुणी अधिक है, क्योंकि धतूरा फल खाने पर ही नशा चढ़ाता है परन्तु कनक अर्थात् धन को प्राप्त करते ही नशा चढ़ जाता है अर्थात् मनुष्य अधिक धन का इच्छुक, गर्वी एवं व्यसनी बन जाता है ।

दूरर्ज्येना सुरक्षेण नश्वरेणं धनादिना ।
स्वस्थ मन्यो जनः कोऽपि ज्वरवानिव सर्पिणा ।।

इष्टोपदेश । श्लो. ११३

धन सम्पत्ति अर्जन करना अत्यन्त कष्ट साध्य है । धनार्जन के लिये मनुष्य भयंकर जंगल में जाता है, अथाह समुद्र में डूबता है । अपार सागर को पार करके प्रिय कुटुम्ब को छोड़कर अपरिचित देशान्तर को जाता है ।

मालिक के सामने नाचता है, गाता है, चापलूसी करता है, दीनहीन के सदृश्य मालिक की सेवा करता हैं । धन-सम्पत्ति के लिये चोरी, डकैती, काला बाजार (दो नम्बर का काम) शोषण आदि भी करता है जिससे महापाप का बन्ध होता है । धन उपार्जन के बाद भी शांति नहीं मिलतो

है सुरक्षा के लिये दिनरात– चिन्ता करता है। धन-संपत्ति को छिपाता है। ताला के ऊपर ताले लगाकर रखता है, असुरक्षा के भय के कारण भयभीत रहता है। कोई अपरहण करने से उसके विरोध में लढ़ाई भी करता है, विविध प्रकार सुरक्षा करने पर भी पुण्य के अभाव से धन नहीं रहता है। इस प्रकार आय में दुःख, व्यय में दुःख, रक्षा में दुःख इस प्रकार आदि–मध्य–अन्त में दुःख स्वरूप धन प्राप्त कर सुख मानता है, जैसे ज्वर ग्रसित रोगी घी पीकर सुख मानता है। ज्वर से ग्रसित रोगी के घी पीने पर उसका रोग बढ़ेगा ही घटेगा नहीं। उसी प्रकार धन से संताप बढ़ेगा ही घटेगा नहीं ।

अर्थिनो धनम् प्राप्य धनिनोऽप्य वितृप्तिः ।
कष्टं सर्वेऽपि सीदन्ति परमेको मुनिः सुखी ।।

(आत्मानुशासनं)

धन इच्छुक धन नहीं प्राप्त कर एवं धनी अतृप्ति के कारण दुःखी रहते हैं, परन्तु जिसने समस्त आशा को अपना दास बना दिया है, उस प्रकार के महामुनि ही सुखी हैं।

आशा दासी कृतयेन तेन दासी कृत जगत् ।
आशायाश्च भवेत् दास सः दास सर्व देहीनाम् ।

जिसने आशा को अपना दास बना दिया, उसने सर्व

जगत् को दास बना दिया। जो आशा का दास बन गया वह सब जीवों का दास बन गया।

आशा गर्तः प्रति प्राणी यस्मिन् विश्वमणूपमम्।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिना ॥

(आत्मानुशासन)

एक-एक जीव का आशा रूपी गड्ढा इतना विशाल है कि उसमें यदि इस सम्पूर्ण विश्व को डाला जाये तो भी वह विश्व उस गड्डे में एक अणु के समान दृष्टि गोचर होगा। यदि एक ही जीव की आशा के लिये यह सम्पूर्ण विश्व भी अत्यन्त कम है तब विश्व में स्थित अनंतानंत जीवों के लिये कितना भागांश मिलेगा इसलिये विषय-इच्छा करना नितान्त भूल है। यह आशा रूपी गर्त (गड्डा) अत्यन्त विचित्र है, क्योंकि एक बार गर्त में जितना-जितना द्रव्य डालते जायेंगे वह गर्त उतना-उतना पूर्ण होता जायेगा किन्तु आशा रूपी गर्त में जितना-जितना द्रव्य डालेंगे उतना-उतना आशा का गड्डा बढ़ता ही जायेगा किन्तु कम नहीं होगा अर्थात् भरेगा नहीं बढ़ता ही जायेगा और जितना-जितना कम करते जायेंगे उतना-उतना पूर्ण होता जायेगा और पूर्ण आशा को निकाल देने से गड्डा पूर्ण रूप से भर जायेगा। यही इस गड्डे कि विचित्रता है। इसलिये

आशा की पूर्ति आशा त्याग से ही होती है आशा करने से नहीं होती है ।

नग्नत्व का कारण—

उपरोक्त दोष—गुण का विचार करके प्रबुद्ध, विवेकी, सुख शांति इच्छुक जीव अन्तरंग एवं बहिरंग परिग्रह को त्याग करते हैं । वे अपने शरीर को भी पर द्रव्य मानते हैं और शरीर को भी त्याग करने के लिये प्रयत्नशील रहते है, इसीलिये बाह्य परिग्रह के साथ विकार को छिपाने योग्य शृंगार के उपकरण-(वस्तुयें) शरीर की सुरक्षाभूत सम्पूर्ण वस्त्रों का त्याग करके बालकवत् सरल-सहज, अन्त-रंग बहिरंग ग्रंथी से रहित यथा जात रूप निर्ग्रन्थ (नग्न) है । इस रूप को धारण करके आत्मोन्नति के लिये तत्पर हो जाते हैं नग्नत्व व्यवहारिक अपरिग्रहवाद का ज्वलन्त आदर्श उदाहरण है ।

समाजवादी नेता केवल भाषण करते हैं किन्तु पूर्ण रूप से अपरिग्रहवाद को जीवन में उतारते नहीं हैं, परन्तु दिग-म्बर साधु केवल भाषण ही नहीं करते हैं किन्तु आचरण में भी विश्व के सामने अनुकरणीय–परमोत्कर्ष आदर्श स्थापित करते हैं । इस आदर्श का अनुकरण करके साम्य-वादी, अपरिग्रहवादी. समाजवादी, मनुष्य को भी यथा

शक्ति उस आदर्श को जीवन में उतारना चाहिये ।

वर्तमान आधुनिक दुनिया में अपरिग्रहवाद के महत्त्व से सभी अवगत है । एवं उसके आदर्श पर सब को स्वाभिमान भी हैं । काल मार्क्स लेनिन आदि सामाजिक नेताओं ने अपरिग्रहवाद के महत्त्व का अनुभव करके उसका स्थापन-प्रचार-प्रसार किया है परन्तु जैनधर्म का साम्यवाद अन्तकरण पूर्वक सरल–सहज स्व प्रवृत्ति से होता है । यदि देश, राष्ट्र, समाज को सह अस्तित्त्व विश्व मैत्री, समता भाव चाहिये एवं विषमता की खाई को कम करना है, तो अपरिग्रहवाद को शीघ्रातिशीघ्र स्वेच्छापूर्वक पालन करना चाहिये ।

ईसा मसीह ने अपने उपदेश में प्रतिपादित किया था कि एक सुई के छेद से कदाचित (अनहोनी जैसी होनी) हाथी निकल सकता है परन्तु परिग्रह धारी मनुष्य ईश्वरी राज्य के विशाल दरवाजे में प्रवेश नहीं कर सकता है । अर्थात् परिग्रह स्वर्ग–मोक्ष प्राप्ति के लिये, सुख शांति के लिये प्रतिवर्धक स्वरूप है ।

वर्तमान देश-विदेश में साम्यवाद का गुणगान होते हुए भी उसको आचरण में नहीं अपनाने के कारण विषमता फैल रही है । दुनिया में खाद्य सामग्री एवं जीवनोप-

योगी सामग्रियों का अभाव नहीं होने पर अपरिग्रह रूपी बाड़ (तट) के अभाव में समिचीन वितरण नहीं होता है इसके कारण ही आज देश में समाज में कोई करोड पति है तो कोई एक रोटी का भी दुर्भागा है कंगाल है। एक स्वादिष्ट–गरिष्ट भोजन करते-करते मरण को प्राप्त होता है तो एक भोजन के नहीं होने से भूखा ही मरण को प्राप्त होता है। एक अतुल वैभव की चिन्ता से दूःखी है, तो एक धन नहीं होने से दुःखी है। क्या इस में हमारे समाज के पूंजी पति कारण नहीं हो सकते है ?

यदि दिगम्बर जैन साधु के सदृश्य पूर्ण रूप से परिग्रह त्याग करना संभव नहीं है तो नितान्त आवश्यक जीवनोपयोगी सामग्री रखकर अन्य वस्तुओं का त्याग करना चाहिये उस को अपरिग्रह अणुव्रत कहते हैं। अपरिग्रह अणुव्रत प्रत्येक आदर्श नागरिक के लिये परमावश्यक है।

पंचम परिच्छेद

आत्म धर्म–उत्तम क्षमादि १० धर्म

(१) उत्तम क्षमा–धर्म

प्रति शोध समर्थोऽपि यः आत्म भाव स्वभावतः ।
क्षमिस्यन्ति स्वपरान् सा उत्तम क्षमा भवेत् ।।

अर्थ—प्रतिशोध शक्ति के होते हुए भी जो आत्मा के सहज स्वभाव से स्व–पर को क्षमा करता है, उसको उत्तम क्षमा कहते है।

क्ष=पृथ्वी। पृथ्वी जैसे सहन करती है, उसी प्रकार समता भाव से सहन करना उत्तम क्षमा है। पृथ्वी के ऊपर कृषक खेती करता है, तालाब, कुआं, नहर, खान आदि खुदवाते हैं तो भी पृथ्वी क्षुभित नहीं होती है, उसी प्रकार दुष्ट अज्ञानी जीव गाली-निन्दा, प्रताड़ना आदि करने पर भी जो समता भाव से सहन किया जाता है उसको उत्तम क्षमा कहते हैं। क्षुभित होने के कारण होते हुए भी एवं प्रतिशोध लेने की शक्ति होने पर भी क्षुभित नहीं होना उत्तम क्षमा है। श्लोक में "क्षमिस्यन्ति स्वपरान्" शब्द

दिया गया है। इसका कारण यह है कि क्रोधित होकर दूसरों का प्रतिशोध लेने से स्वयं को अर्थात् अपनी आत्मा को क्षमा नहीं किया, जिससे महान् अक्षमा हुई। इसलिये मन में स्वयं क्षुभित नहीं होना वास्तव में स्वयं के ऊपर क्षमा है। और उस अन्तरंग क्षमा भाव से दूसरों पर क्षमा भाव रखना दूसरों के ऊपर क्षमा है। जो इस प्रकार दोनों प्रकार की क्षमा धारण करता है वही यथार्थ में क्षमावान है? कोई शक्तिशाली जीव कष्ट देने पर अपनी दुर्बलता के कारण तत्काल तो कोई प्रतिशोध नहीं लेता परन्तु मन में प्रतिशोध की भावना रखकर मन में विचार करता है कि सुयोग्य अवसर प्राप्त होने पर बदला लूंगा, वह व्यक्ति यथार्थ से क्षमावान नहीं हैं। कोई शक्तिशाली अन्याय-अत्याचार करता है। उसका विरोध करने के लिये शक्ति के अभाव से कोई बोलता है कि मैने तुमको क्षमा कर दिया तो वह क्षमा नहीं हुई। अन्याय-अत्याचार-दुराचार का हिंसात्मक साधन या उपाय से विरोध नहीं करना चाहिये। किन्तु अहिंसात्मक उपाय से निराकरण करना ही उत्तम क्षमा है, यदि विरोध नहीं करते हैं तो वह अक्षमा धर्म है क्योंकि उससे दुनिया में अन्याय-अत्याचार-दुराचार एवं अन्यायियों का प्रभाव बढ़ता जाता है।

यदि सन्तान कुमार्गगामी है तो माता-पिता को उसको अन्तरंग करुणा भाव से दण्ड देकर सन्मार्ग में लगाना भी क्षमा धर्म है। क्योंकि उसमें प्रतिशोध की भावना नहीं बल्कि दूसरे का सुधार हो यही भावना है। जैसे—शिष्य के लिये गुरु, प्रजा के लिये राजा, जनता के लिये नगराधिपति, रोगी के लिये वैद्य, दोषी के लिये न्यायाधीश अपराधानुसार दण्ड देता है, तो वह भी क्षमा-धर्म के विरुद्ध नहीं है।

(२) मार्दव धर्म—

मान कारण सद्भुवेऽपि य भाव मृदु: स्वभावतः।
स उत्तम मार्दव भवेत् महान गुण साधनः।।

अर्थ—अभिमान का कारण होते हुए भी मृदु स्वभाव से अहंकार नहीं करना उत्तम मार्दव धर्म है। यह मृदुता धर्म महान गुणों का साधक है। अहंकार के कारणभूत विशेष ज्ञान, पूजा, (बड़प्पन-प्रतिष्ठा) कुल, जाति, शारीरिक बल, ऋद्धि, (धन वैभव शक्ति) तप, शरीर की सुन्दरता आदि होते हुए अहंकार नहीं करके मृदुता धारण करना मार्दव धर्म है। ज्ञानी सोचता है कि यह सब वैभव पूर्व कर्म के उदय से मिला है, पुण्य के अभाव से ये सब विलीन हो जायेंगे। इसलिए सब वैभव मेरा स्वभाव नहीं है कर्म–

जनित है । मेरा तो अंतरंग वैभव इस वैभव से अनंत गुणा अधिक एवं शाश्वतिक है । कर्म ने मुझे ठगकर मेरे यथार्थ वैभव को लूट लिया है और यह तुच्छ वैभव मेरे को दिया है । दूसरी दृष्टि से मेरे से भी महानज्ञानी वैभव सम्पन्न शक्तिशाली तपस्वी सुन्दर आदि गुणों से अलंकृत विश्व में अनेकानेक मानव है । उनके सामने मैं तो सूर्य के सामने जुगनू सदृश्य हूं । इसी प्रकार विचार करके ज्ञानी जन अहंकार नहीं करते हैं । और जो जितना-जितना मृदु विनयशील होता जाता है, उसको उतना सम्मान-महत्ता मिलती जाती है ।

सम्पूर्ण कुंभ न करोति शब्द,
अर्द्ध घट शब्द करोति नूनम् ।
सज्जन महान न करोति गर्व,
गुण विहीनं बहुजल्पयंति ।।

पानी भरा हुआ कलश शब्द नहीं करता है, अर्द्ध भरा हुआ कलश छल्-छल् शब्द करता है । जो सज्जन ज्ञानी महान होते हैं, वे गर्व नहीं करते हैं । परन्तु जो गुण विहीन होते हैं, वे बहुत बकवास करते हैं । अहंकारी व्यक्ति गुरु-जनों को सम्मान नहीं देता है, विनय नहीं करता है । महाप्रवाह (Flood) से बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ जाते हैं, परन्तु

बेंत, घास आदि को कोई प्रकार क्षति नहीं होती है, क्योंकि पेड़ झुकता नहीं है जिससे पानी उसको उखाड़कर फेंक देता है परन्तु घास आदि नम्र से झुकने के कारण पानी ऊपर से बह जाता है और उसकी कोई क्षति नहीं होती हैं। इस प्रकार दुनिया में जीने की एक बड़ी कला है नम्रता (विनयी) होना। जब वृक्ष में पुष्प-फलादि नहीं रहता है तब वृक्ष सीधा खड़ा रहता है। फूल आने के पश्चात् और भी नम्र होता है जितने फल अधिक आयेंगे एवं फल बड़े होते जायेंगे उतना ही वृक्ष अधिक नम्र होता जाता है, उसी प्रकार गुण विहीन नम्र नहीं होता है, अर्थात् झुकता नहीं है। अहंकारी ऊँट के समान सिर ऊपर करके अभिमान में चलता है और गुणी व्यक्ति नम्र होकर चलता है।

(३) आर्जव धर्म

मनसा वचसा काया यः भाव ऋजु सर्वदा।
आर्जव गुण महान अभ्युदय मोक्ष शर्मदा।।

मन-वचन-काय से जो सरल भाव है उसको आर्जव धर्म कहते हैं। यह आर्जव गुण महान है और यह स्वर्गादि अभ्युदय सुख एवं मोक्ष सुख को देने वाला है।

बालकवत् मन से, वचन से, काय से कपटता-मायाचार-वक्रता छोड़कर जो सरल चिंतन, सरल कथन एवं सरल

काया से व्यवहार करते हैं उसको आर्जव धर्म कहते हैं।

मनस्येकं वचनस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ।

अर्थ—महात्माओं की मन-वचन-काय की सरल एक सी प्रवृत्ति होती है एवं दुर्जनों की मन-वचन-काय की प्रवृत्ति दूसरी ही होती है। जैसे—बगुला एक पैर से खड़ा रहकर ध्यानी के समान ध्यान करता है, परन्तु मछली को देखते ही पकड़कर खा जाता है। उसी प्रकार बगुला ज्ञानी-ध्यानी रहते हैं, जो बाह्य से साधु पुरुष दिखाई देते हैं, परन्तु अन्तरंग में महान दुष्ट रहते हैं। ऐसे लोग "दिन का साधु रात का चोर" कहावत को चरितार्थ करते हैं। उनके मुख में राम और बगल में छुरी रहती है। कोई भी पाप करके छिपाने से नहीं छिपता है और अधिक विकृतरूप धारणकर प्रकट होता है। जैसे कि लोक कहावत है—

पाप न छिपे कभी छिपाय,
आग न छिपे रुई लिपटाय।

पाप का छिपाना अर्थात् अग्नि को रुई में छिपाने के सदृश्य है। जैसे आग को रुई से छिपाने से अग्नि छिपती नहीं है और अधिक प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार पाप को छिपाने से और अधिक पाप प्रज्ज्वलित हो उठता है। मायाचारी से तिर्यञ्च गति प्राप्त होती है और माया-

चारी व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता है। बालक सरल होने से सब कोई उसको प्रेम-प्रिय आदर देते हैं और बालक किसी प्रकार से दोष होने पर भी उसे विशेष दोषी नहीं मानते हैं, इसका मूल कारण है, उसकी सरलता।

(४) उत्तम शौच धर्म—

लोभ कलंक त्यागेन यः आत्म शुचि भावना।
सः शौच उत्तम तीर्थ सर्व ताप विनाशकम्॥

अर्थ—लोभ कषाय रूपी कल्मष त्याग से जो आत्मा में पवित्र निर्मल भावना उत्पन्न होती है, उसको शौच धर्म कहते हैं, यह शौच धर्म सर्व तीर्थ में उत्तम तीर्थ है। और यह तीर्थ समस्त सन्ताप को दूर करने वाला है।

"लोभ पाप का बाप बखाना"

पाप बखाना के अनुसार सर्व लोभ पापों में बड़ा पाप एवं सर्व पापों का मूल लोभ प्रवृत्ति है। इसलिये लोभ आदर्श जीवन यापन करने के लिये कलंक स्वरूप है। इस लोभ रूपी कलंक से आत्मा दूषित हो जाती है। लोभ रूपी कलंक त्याग से, कीचड से रहित पानी स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा स्वच्छ हो जाती है। यह निर्लोभता रूपी शौच धर्म उत्तम तीर्थ है, जैसे उत्तम तीर्थ में स्नाण करने से

शारीरिक ताप नष्ट होता है। इसी प्रकार इस शौच रूपी तीर्थ में स्नान करने से तृष्णा, लोभ, इच्छा, आकांक्षा रूपी अग्नि शान्त हो जाती है। जिससे मनुष्य को महान आध्यात्मिक मानसिक शांति मिलती है।

अन्तरंग शुचिता रहित बाह्य शुचिता, उसी प्रकार है जैसे विष्ठा के घड़े को ऊपर से स्वच्छ करना। केवल बाह्य चर्म को धोने से अन्तरात्मा पवित्र नहीं होती है।

महाभारत में भी कहा है—

आत्मा नहीं संयम पूर्ण तीर्था,
सत्योदका शील तटदयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र,
न वारिणा शुध्यान्ति चान्तरात्मा ।।

अर्थ—आत्मा ही पवित्र नदी है संयम रूपी पवित्र तीर्थ है। जो सत्य रूपी नीर (पाणी) से भरा है शील रूपी तट है। दया रूपी लहरें हैं ऐसे आत्म गंगा (नदी) में हे पाण्डु नन्दन ! आप स्नान कीजिये, जिससे आपकी आत्मा पवित्र होगी। केवल गंगा के पाणी से स्नान करने से अन्तरात्मा पवित्र नहीं होगी। गंगा स्नान से आत्मा पवित्र हो जाती, तो उसमें रहने वाले मेंढ़क-मछली की आत्मा पवित्र होगी क्या ? अन्तरात्मा पवित्र करने के लिये लोभ कषाय

रूपी कलंक त्याग करके शौच रूपी निर्मल जल से स्नान करना अत्यन्त अनिवार्य है ।

(५) उत्तम सत्य धर्म—

सम्दोहितं सत्यं वाचं सत्यं शिवं सुन्दरम् ।
सत्यं वस्तु स्वरूपं च चिदानन्द मंगलम् ।।

अर्थ—प्राणियों के लिये हितकर वचन सत्य वचन है । सत्य ही शिव स्वरूप है एवं सुन्दर है । सत्य ही वस्तु का स्वभाव है और सत्य ही चिदानंद मय एवं मंगल स्वरूप है ।

केवल वह सत्य, सत्य नहीं है, जिससे प्राणियों का हित नहीं होता है किन्तु अहित होता है । परन्तु वह वचन सत्य है, जिससे प्राणियों का हित होता है । केवल सत्य वाचतिक नहीं होना चाहिये, वह मानसिक एवं शारीरिक भी होना चाहिये । सत्य को छोड़कर विश्व में अन्य कोई शाश्वनिक वस्तु नहीं है । सत्य ही शिव (शाश्वतिक मंगल) है जो मंगल एवं शाश्वतिक होता है, वही सुन्दर होता है । यह जगत् सत्य में ही प्रतिष्ठित है । क्योंकि वस्तु स्वरूप सत् स्वरूप है । चिदानंदमय मंगलमय भगवान भी सत् स्वरूप है । महात्मा गांधी सत्य को प्राण से भी अधिक प्यार करते थे, वे बोलते थे "Truth is God and God is truth"

सत्य ही भगवान है एवं भगवान ही सत्य है। उनकी दृष्टि में सत्य को छोड़कर अन्य कोई भगवान नहीं था। जैनाचार्यों ने भी कहा है—

"सच वम् भगवम्" अर्थात् सत्य ही भगवान है। जो सत्य बोलता है एवं सत्य आचरण करता है, वह जो कुछ बोलता है, उसको सब कोई मान्यता देते हैं और उसका वचन मंत्रवत् शक्तिशाली हो जाता है। सम्पूर्ण धर्म दर्शन का साहित्य सत्य उपासक महापुरुषों के पवित्र वचन हैं, उनके पवित्र वचन ही उन-उन सम्प्रदाय के शास्त्र बन गये हैं।

और अपने-अपने सम्प्रदाय के लोग उन-उन शास्त्रों को बहुत ही पूज्य दृष्टि से देखते हैं।

(६) उत्तम संयम धर्म—

इन्द्रिय मन रोधनं सर्व प्राणी रक्षणम् ।
आत्मामृत भोजनं कर्म यम संहारणम् ।

अर्थ—पंचेन्द्रियों का, मन का, निरोध करना, एवं प्राणियों की रक्षा करना एवं आत्मा में लीन होकर आत्म अमृत भोजन करने को संयम धर्म कहते हैं।

संयम दो प्रकार का है (१) इन्द्रिय संयम (२) प्राणी संयम।

इन्द्रिय संयम—१. स्पर्शन इन्द्रिय २. रसना इन्द्रिय ३. घ्राण इन्द्रिय ४. चक्षु इन्द्रिय ५. कर्ण इन्द्रिय ।

इन्द्रियों को अपने-अपने दुष्प्रवृत्त विषयों से रोकना एवं मन की दुष्प्रवृत्ति को रोकना इन्द्रिय संयम है ।

प्राणी संयम—१. पृथ्वी कायिक २. जल कायिक ३. अग्नि कायिक ४. वायु कायिक ५. वनस्पति कायिक ६. त्रस कायिक (द्वीन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय) जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है । इन्द्रिय संयम एवं प्राणी संयम से आत्मा संयमित होकर आत्मा में ही रमण करने लगती है जिससे उसको आत्मानुभव रूप अमृत मिलता है। उस अमृत का पान करके वीर्य वान होकर कर्म रूपी यम को नाश करके अजर-अमर शाश्वतिक मोक्ष रूपी अमृत पद को प्राप्त कर लेता है ।

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्ति स्नान मिव क्रिया ।
दुर्भगा मरण प्रायो ज्ञानं भारः क्रिया विना ।।

अर्थ—जिसका मन और इन्द्रिय असंयमित है, उसकी समस्त धार्मिक क्रियायें गज स्नान के समान हैं, क्योंकि हाथी जैसे स्नान करके पुनः धूल, मिट्टी शरीरादि में डालकर गंदा हो जाता है, उसी प्रकार असंयमित व्यक्ति धर्म कार्य से जो कुछ शुद्धता को प्राप्त करता है, असंयम के माध्यम से पुनः

मलिनता को प्राप्त हो जाता है। विधवा स्त्री आभूषण से अलंकृत होने पर, शोभा नहीं देती है, उसी प्रकार चारित्र रहित ज्ञान शोभा नहीं देता है, वह ज्ञान भार स्वरूप है।

जैसे सुशिक्षित भद्र शक्तिशाली घोड़ा मालिक का उपकार करता है एवं दुष्ट घोड़ा मालिक को विपत्ति में डालकर अपकार करता है, उसी प्रकार संयमित इन्द्रिय एवं मन प्राणी का उपकार करते हैं एवं असंयमित अवस्था में प्राणी को विपत्ति रूप गड्ढे में डाल देते हैं। संयमित मन एवं इन्द्रिय मन्त्री के पुलिस के समान है एवं असंयमित मन एवं इन्द्रिय चोर की पुलिस के समान है। मंत्री की सुरक्षा पुलिस करती है एवं मंत्री की आज्ञानुसार पुलिस चलती है। और पुलिस के अनुसार चोर चलता हैं एवं पुलिस चोर को दण्डित करते हैं। इसी प्रकार असंयम है। असंयमित मन एवं इन्द्रियाँ प्राणी के ऊपर शासन करते हैं एवं विभिन्न यातनाएँ देते हैं।

संचय रूप से रेल गाड़ी चलती है तो किसी प्रकार की दुर्घटना नहीं होती है, यदि रेल गाड़ी संयम को छोड़कर अर्थात् पटरी से हटकर चलती है तो दुर्घटना निश्चित है। उससे गाड़ी की भी क्षति होती है और यात्रियों की भी क्षति होती है। संयम से चाकू से फल काटने पर हाथ नहीं कटता है एवं असंयम से फल काटने पर अंगुली कट जाती

है। संयम से अग्नि से काम लेने पर अनेक उत्तमोत्तम साधन हो सकते हैं एवं असंयमित होकर अग्नि से कार्य करने पर अनेक विध्वंसक घटनायें घटती हैं।

महावीर भगवान गौतम गणधर स्वामी को संबोधन करते हुए बोले थे—

"गोयम पमायेण एक समय न मुकऊ"।

हे गौतम ! आपका एक क्षण भी प्रमाद से, असंयम से, लापरवाही से नहीं जाना चाहिये। क्योंकि—

"संयमेव जीवनं असंयमेव मरणम्"।

संयम ही जीवन है एवं असंयम ही मृत्यु है।

अनेक दुर्घटनाएँ असंयम के कारण घटती हैं। लगाम रहित दुष्ट घोड़े पर बैठकर जाने वाले यात्रियों की जो दशा होती है, वर्तमान संयम रहित मनुष्य की भी वही स्थिति है। आधुनिक सभ्य व्यक्ति तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, परन्तु उसका लक्ष्य निश्चित नहीं है, मनो व्यापार डावांडोल है। सुरक्षा की निश्चितता से रहित है जैसे एक कार के लियें गति चाहिये, प्रकाश चाहिये एवं ब्रेक चाहिये उसी प्रकार जीवन रूपी कार के लिये उन्नति रूपी गति चाहिये। ज्ञान रूपी प्रकाश चाहिये। एवं संयम रूपी ब्रेक चाहिये, ब्रेक रहित कार बेकार है उसी प्रकार संयम रहित जीवन बेकार

है। ब्रेक रहित गतिशील कार जैसे अनेक दुर्घटनाओं का कारण बनती है, उसी प्रकार संयम रहित जीवन में अनेक दुर्घटनाएँ छा जाती हैं।

(७) उत्तम तप धर्म—

इच्छा निरोधने तपः तप बाह्य अन्तरम् ।
सर्व इच्छा फल प्रदं कर्म बन पावकम् ।।

अर्थ—इच्छा निरोध को तप कहते हैं। वह तप बहिरङ्ग-अंतरङ्ग के भेद से दो प्रकार का है। वह तप सम्पूर्ण मनोवांछित फल को देता है। कर्म रूपी वन को नाश करने के लिये अग्नि के तुल्य है।

अज्ञानी जीव मृग के समान मृगमरीचिका रूपी वैभव को विषय वासना को प्राप्त करके सुखी होना चाहता है, परन्तु अंततोगत्वा इच्छित फल को प्राप्त नहीं करके स्वयं ही मृग के समान मर मिटता है। जो ज्ञानी होते हैं, वे सोचते हैं एकतः संसार में सुख ही नहीं है। इच्छा की कभी पूर्ति होगी नहीं तब विफल प्रयास करना वृथा ही है। जिस प्रकार सूर्य की ओर पीठ करके अपनी छाया को पकड़ने के लिये दौड़ने पर छाया आगे-आगे भागती जाती है, उसी प्रकार वैभव को इन्द्रिय जनित सुख को पकड़ने के लिये जितना उनके पीछे भागेंगे वे उतने ही आगे भागेंगे। परन्तु

जैसे बैठ जाने से छाया पैर के नीचे स्वयमेव बैठ जाती है उसी प्रकार जो इच्छा को त्याग कर स्वयमेव में स्थिर हो जाते हैं, उनकी इच्छा उनके चरण के नीचे बैठ जाती है।

बाह्य—अभ्यन्तर भेद से तपश्चरण दो प्रकार का है। बाह्य तप के छह प्रकार हैं। (१) अनशन (२) अवमौदर्य (३) वृत्ति परिसंख्यान (४) रस त्याग (५) एकांतवास (६) काय क्लेश।

ये बाह्य तप अन्तरङ्ग तप के लिये साधन हैं। इससे अंतरंग तप वृद्धि को प्राप्त होता है।

बाह्य तप—

१. **अनशन तप**—इन्द्रियों का दमन करने के लिये, स्वास्थ्य सम्पादन करने के लिये, कषायों को मंद करने के लिये, आत्म बल वृद्धि के लिये, ब्रह्मचर्य को निर्मल बनाने के लिये, शरीर को हल्का एवं स्फूर्तिमय बनानें के लिये ज्ञान-ध्यान सम्पादन के लिये जो ४ प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है। उसे अनशन कहते हैं।

२. **अवमौदर्य तप**—आलस्य एवं प्रमाद को दूर करने के लिये एवं उपरोक्त अनशन के कारण को यथायोग्य सम्पादन के लिये भूख से कुछ कम आहार करना अवमौदर्य तप है।

३. **वृत्ति परिसंख्यान**—इच्छा निरोध के लिये, इन्द्रिय दमन के लिये, अनियत आहार के लिये, राग-द्वेष दूर करने के लिये आहार संबंधी जो नियम होते हैं, उसे वृत्ति परिसंख्यान तप कहते हैं।

४. **रस परित्याग**—जिह्वा-लालसा को जीतने के लिये, इन्द्रिय दमन के लिये, ब्रह्मचर्य व्रत निर्मल बनाने के लिये, रस की शुद्धता कम करने के लिये एकाधिक रस एवं सर्व रसों का त्याग करना रस परित्याग तप है।

५. **एकान्तवास**—ध्यान-अध्ययन, मनन, चिंतन सुचारु रूप से करने के लिये, राग-द्वेष कम करने के लिये, प्रशांत भावना के लिये, स्त्री-पुरुष, नपुंसक, पशु-कीड़े वगैरे, दुष्ट व्यक्ति, क्षुद्र जीव से रहित एकान्त स्थान में बैठना-उठना-शयन करना ध्यान करना अध्ययन करना एकान्तवास या विविक्त शय्यासन है।

६. **काय क्लेश**—शरीर से ममत्त्व घटाने के लिये, आत्म साधन के लिये जो शरीर को अनेक प्रकार के आतापन योगादि से सुसंस्कारीत या प्रशिक्षित किया जाता है उसको काय क्लेश तप कहते हैं। किन्तु रत्नत्रय से रहित या विशुद्ध परिणाम रहित अज्ञानता से किया जाने वाला काय क्लेश तप नहीं वह स्वयं की मूढ़ता के साथ मूर्खता है।

छह अन्तरंग तप—

१. प्रायश्चित २. विनय ३. वैय्यावृत्ति ४. स्वाध्याय ५. व्युत्सर्ग ६. ध्यान ये छह प्रकार के अन्तरंग तप हैं।

१. **प्रायश्चित**—पूर्व कृत मिथ्या भाव, कर्म एवं प्रवृत्ति का शोधन करने के लिये चित्त विशुद्धि के लिये, कर्म निर्जरा के लिये, सब के विश्वास पात्र बनने के लिये, प्रायश्चित्त गुरु साक्षी पूर्वक या गुरु के नहीं रहने पर भगवान के समक्ष, स्व साक्षी पूर्वक, स्व निंदा-गर्हा आलोचना-प्रतिक्रमण आदि पूर्वक जो आत्म शोधन किया जाता है, उसको प्रायश्चित्त कहते हैं, प्रायश्चित्त से मन की शुद्धि होती है, जिससे अनेक मानसिक तनाव ग्रंथियाँ खुल जाती हैं, मन स्वच्छ-निर्मल हो जाता है।

अनेक मानसिक रोग के साथ-साथ शारीरिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं। वर्तमान की मानसिक चिकित्सा की प्रणाली अधिकांशतः इसके ऊपर निर्भर है।

२. **विनय**—गुण एवं गुणी के प्रति जो आदर-सत्कार पूज्य एवं विनम्र भाव है उसी को विनय तप कहते हैं। विनय के पात्र की दृष्टि से पांच प्रकार हैं—

१. ज्ञान विनय २. दर्शन विनय ३. चारित्र विनय ४. तप विनय ५. उपचार विनय।

१. **ज्ञान विनय**—ज्ञान एवं ज्ञानी पुरुष का विनय करना ज्ञान विनय है।

२. **दर्शन विनय**—दर्शन से यहाँ सम्यग्दर्शन लेना सम्यक् दर्शन एवं सम्यग्दृष्टि का विनय करना दर्शन विनय है।

३. **चारित्र विनय**—चारित्र एवं चारित्रवान पुरुषों का विनय करना चारित्र विनय है।

४. **तप विनय**—तप एवं तपस्वियों का विनय करना तप विनय है।

५. **उपचार विनय**—गुरुजन आदि अपने से बड़े, गुणवान, सज्जन, सधर्मात्माओं को उच्चासन देना, अभिवादन करना, उनकी प्रत्यक्ष और परोक्ष से प्रशंसा करना उनके साथ भेद-भाव रहित व्यवहार करना आदि उपचार विनय है।

विनय का फल—

विनय वान व्यक्ति जिस गुण का विनय करता है उसे उस गुण की प्राप्ति हो जाती है। आचार्य कुन्दकुन्द देव जैसे अध्यात्म के अमर गायक भी कहते हैं कि—

विणओ सासण मूलो, विणयादो संयमो तवो णाणं ।
विणयेन विप्पहूणस्स, कुदो धम्मो कुदो य तवो ।।

(मूलाचार)

अर्थ—विनय शासन का मूल है। विनय से संयम, तप, ज्ञान की प्रगति होती है। विनय से रहित व्यक्ति का धर्म कहाँ है, तप कहां है अर्थात् विनय रहित धर्म एवं तप निष्फल हैं।

विणयेण विप्पहिणस्स, हवदि सिक्खा विरत्थिदा सव्वा।
विणग्रो सिक्खाह फलं विणय फलं सव्व कल्याणं ।।६६१।।
विणग्रो मोक्खद्दारो विनयादो संजमो तवो णाणं।
विणएणाराहिज्जादि ग्रायरिग्रो सव्व संघो य ।।६६२।।

अर्थ—विनय से रहित सम्पूर्ण शिक्षा निरर्थक हो जाती है, क्योंकि शिक्षा का फल विनय है। यदि शिक्षा के माध्यम से विनय प्रकट नहीं हुआ तो विनय के अभाव से शिक्षा निष्फल होने से शिक्षा निरर्थक हुई, विनय का फल सर्व कल्याण है, अर्थात् विनय से इह लोक में सन्मान-पूज्यता तथा परभव में स्वर्ग-मोक्ष मिलता है।

विनय मोक्ष के लिये द्वार स्वरूप है। विनय से संयम, तप एवं ज्ञान प्राप्त होता है, विनय से आचार्य सम्पूर्ण संघ को अनुशासित करते हैं विग्रह-अनुग्रह करते हैं एवं धर्म मार्ग में प्रवृत्त करते हैं। विनयशील शिष्य को गुरु प्रेम-आदर देते हैं। उसको योग्य शिक्षा ज्ञान-उपदेश देते हैं। विनय रहित शिष्य गुरु से तथा सहधर्मियों से भी सन्मान-आदर नहीं पाता है। गुरु विशेष शिक्षा ज्ञान उपदेश नहीं

देते हैं। जिससे उसका संयम-तप-ज्ञान वृद्धि का पात्र नहीं होता है। परन्तु ह्रास को प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है।

वर्तमान पारिवारिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, शैक्षणिक क्षेत्र में, प्रशासनिक क्षेत्र में, धार्मिक क्षेत्र आदि में केवल अविनय, उदण्डता एवं स्वेच्छाचार ही चल रहा है। जिससे अशांति-कलह, असंगठन, तनाव आदि का ही वातावरण है। अतः देश, राष्ट्र, समाज, परिवार में शांति का वातावरण बनाना चाहते हो तो आज विनय सहनशीलता को अपनाना ही अत्यावश्यक है।

३. **वैय्यावृत्ति तप**—गुरुजन, सहपाठी, साधर्मी, रोगी, विपत्तिग्रस्त जीवादि की निर्मल भाव से सेवा करना वैय्यावृत्ति तप है।

४. **स्वाध्याय तप**—

नामूत्रास्ति न वा भविष्यति तपः स्कन्धे तपो यत्समं ।
कर्मान्यो भव कोटिभिः क्षिपति यद्योन्तर्मुहूर्तेन तत् ।।
शुद्धि वानशनादि तोऽमित गुणां येन श्रुतेश्नन्नपि ।
स्वाध्यायः सततं क्रियते स मृतावाराधना सिद्धये ।।

अर्थ—अनशनादिक तप करके जो विशुद्ध परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, उनसे भी अनंत गुणी विशुद्धि को स्वाध्याय के द्वारा यह जीव प्रतिदिन भोजन करता हुआ भी

प्राप्त कर लेता है। यथाशक्ति उपवासादिक करते हुये यदि स्वाध्याय किया जाय तब तो बात ही क्या है ? इसी तरह जिन कर्मों को दूसरे तपोनिधि करोड़ों भवों में निर्जीर्ण कर सकते हैं। उन्हीं कर्मों को यह स्वाध्याय केवल अन्तर्मुहूर्त में कुछ कम दो घड़ी मात्र काल में खपा देता है। तथा यह स्वाध्याय एक अपूर्व ही तप है जो कि अनेक अतिशयों से युक्त है। जैसा कि पहले बताया भी जा चुका है।

अनशनादिक छह प्रकार के बाह्य तप और प्रायश्चित्तादिक पांच प्रकार के अंतरंग तप इन सब में इस स्वाध्याय के समान न तो कोई तप हुआ है, न है, न होगा। अतः मरण समय में आराधना की सिद्धि के लिये सम्यग्दर्शनादि परिणामों में सातिशय वृत्ति की प्राप्ति के लिये मुमुक्षुओं को नित्य ही स्वाध्याय करना चाहिये।

जो अध्ययन आत्मोन्नति के लिये किया जाता है, वही यथार्थ स्वाध्याय है, यदि स्वाध्याय ख्याति-पूजा-लाभ या स्वयं के आचरण से पतित होकर अर्थोपार्जन के लिये किया जाने वाला स्वाध्याय या परोपदेशादि यथार्थ में स्वाध्याय नहीं है। वह स्वाध्याय, स्वाध्याय नहीं है परन्तु अपध्यान या अर्थध्यान है एवं जिस शास्त्र से अर्थध्यान होता है वह शास्त्र नहीं वह शस्त्र है। क्योंकि स्वयं का घातक है।

कायोत्सर्ग

कुछ निश्चित समय के लिये शरीर को पर द्रव्य मान कर, उससे निर्मम होकर एवं सम्पूर्ण अनर्थ का मूल मान कर शरीर से ममत्व त्याग करना कायोत्सर्ग है। इससे शारीरिक रोग नष्ट होते हैं। जिससे असंख्यात गुणित कर्मों की निर्जरा भी होती है।

ध्यान

जो सारो सव्व सारेसु, सो सारो रास गोयम्।
सारं झाणंति णामेण सव्वं बुद्धेहिं देसिदं॥
(प्रतिक्रमण)

हे गौतम्! विश्व में जो अनेकानेक सार वस्तु हैं उन सारे सार वस्तुओं में भी सार अर्थात् श्रेष्ठ ध्यान है। इस प्रकार का उपदेश महावीर भगवान ने अपने प्रिय शिष्य गौतम को दिया था।

"एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं"

चित्त को कोई एक ध्येय वस्तु में स्थिर करना ध्यान है। मन जब विभिन्न विषयों में विभक्त हो जाता है, तब मन में स्थिरता नहीं रहतो है। अस्थिरता के कारण मन की ग्रहण शक्ति, स्मरण शक्ति, बुद्धि, प्रज्ञाशक्ति, आदि क्षीण हो जाती है। एक मानसिक शक्ति विभिन्न दिक में

विभाजित होने से उसकी संगठन शक्ति भी क्षीण हो जाती है जिससे कोई भी कार्य करने के लिये पर्याप्त ऊर्जा का अभाव होता है, उससे कार्य उत्तम रीति से नहीं हो पाता है। इसलिये ध्यान की परम आवश्यकता है।

दीप शिखा स्वभाव से सीधी ऊपर जाती है। परन्तु वायु के संचरन से शिखा अपने उर्ध्व गति को छोड़कर इधर-उधर अस्त-व्यस्त गमन करती है, उसी प्रकार चित्त शक्ति भी राग-द्वेषादि विकार भाव रहित अवस्था में ऊर्ध्व मुखी होती है परन्तु राग-द्वेष रूपी वायु के प्रभाव से विक्षोभ होकर अस्त-व्यस्त हो जाती है। इससे उसकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जब सूर्य रश्मि यवकाच (लेन्स) के माध्यम से एकेंन्द्रियकरण हो जाती है तब शीघ्र ही अग्नि उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार जब मन का एकेंन्द्रिय (एकान्त) करण हो जाता है तब ध्यान रूपी अग्नि शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। वह ध्यान अग्नि सम्पूर्ण कर्म इन्धन को जला डालती है।

"ध्यानाग्नि कर्मेन्य भस्मसात् कुरुते क्षणम् ।"

जैसे स्थिर-स्वच्छ पानी में मुख का दर्शन हो जाता है। परन्तु वायु माध्यम से जब पानी अस्थिर हो जाता है तब मुख का प्रतिबिंब नहीं दिखता। इसी प्रकार जब चित्तरूपी

जब निर्मल एवं स्थिर होता है, तब आत्म साक्षात्कार आत्मावलोकन होता है। परन्तु जब मन राग-द्वेष मोह-अज्ञान आदि भावों से विक्षुब्ध होकर अस्थिर एवं मलीन हो जाता है, तब आत्म साक्षात्कार-आत्मावलोकन नहीं होता है, तब विकृत रूप होता है; अतः प्रत्येक कार्य सुचारु रूप से करने के लिये ऊर्जा संरक्षण, संवर्धन करने के लिये, आत्म-साक्षात्कार करने के लिये, कर्म रूपी ईंधन को जलाकर आत्मा को विशुद्ध करने के लिये, स्मरण शक्ति, मेधा शक्ति वृद्धि के लिये, सम्पूर्ण असाध्य कार्य के सिद्धि करने के लिये ध्यान अत्यन्तावश्यक है।

ध्यान से शारीरिक तनाव, मानसिक स्नायु तनाव, ज्ञान तंतुओं का तनाव, शांत हो जाता है। जिससे शारीरिक-मानसिक रोग दूर होकर मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक, शान्ति प्राप्त होती है। एवं चिर सुख शांति मिलती है। वर्तमान आधुनिक मनोविज्ञान में आरोग्य के लिये ध्यान को बहुत महत्त्व दिया है। आधुनिक नारा "योग भगाये रोग" अर्थात् योग से ध्यान की सिद्धि होती है और ध्यान से रोग का नाश होता है। जब आधुनिक वैज्ञानिक लोग, डॉक्टर लोग भी रोग निवारण के लिये अपने विश्वासी (पेटेंट) औषध-ऑपरेशन (शल्य चिकित्सा) से भी अनेक रोगों को दूर नहीं कर पाये एवं अनेकानेक

तनाव जनित नवीन-नवीन रोग उत्पन्न हुये, तब कुछ मनोवैज्ञानिक चिकित्सक, डॉक्टर एवं वैज्ञानिक लोग प्राकृतिक चिकित्सा, ध्यान, आसन, आहार, उपवास, शारीरिक श्रम का अवलंबन लेकर अनेक रोगों का सरल-सहज मितव्यय एवं स्वल्प समय में रोग निवारण करने के लिये समर्थ हुये हैं और इनका अवलंबन अधिकाधिक ले रहे हैं।

इस प्रकार अंतरंग एवं बहिरंग तप से शरीर, मन एवं वचन तप करके शुद्ध हो जाते हैं। तप समस्त उत्थान के लिये कारण है। जो तप नहीं करता है और उसके विरुद्ध भी चलता है, उसका पतन होना अनिवार्य है।

त्याग धर्म—

संयोग अशुद्ध दशा अशुद्धैव दुःखदम् ।
तेन सर्व पर त्यागं त्रिधा सदा कर्तव्यम् ।।

पर संयोग से अशुद्ध दशा होती है और अशुद्ध दशा दुःख के लिये कारण है। संयोग से दुःख होने के कारण संयोग को मनसा, वचना, काया सर्वदा त्याग करना चाहिये।

आत्मा एक शुद्ध द्रव्य है, पुद्गल भी एक शुद्ध द्रव्य है परन्तु जब दोनों मिलते हैं, तब दोनों ही अशुद्ध हो जाते हैं। अशुद्धता से विकृति उत्पन्न होती है, विकृति से सम्पूर्ण

दुःख की परम्परा चलती है। इसलिये सुख प्राप्ति के लिये उपरोक्त क्रिया की प्रतिलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् समस्त संयोग को समस्त रूप से त्याग करना चाहिये।

त्यागो हि परमो धर्मस्त्याग एव परं तपः ।
त्यागादिह यशो लाभः परमभ्युदयो महान ।।

त्याग ही परम धर्म है, त्याग ही परम तप है, त्याग से इहलोक में यश लाभ होता है एवं परलोक में महान अभ्युदय मिलता है ।

परोपकाराय फलंति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्याः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकाराय सतां प्रवृतयः ।।

परोपकार के लिये जीवन भर वृक्ष जीवन शक्ति प्रदायक अमृत तुल्य उत्तमोत्तम फल देते हैं। परोपकार के लिये नदियाँ शीतल मधुर जल लेकर बहती हैं। परोपकार के लिये गायें अमृत समान दूध जीवन भर देती हैं। इसी प्रकार परोपकार के लिये सज्जन सतत प्रयत्नशील रहता है ।

पुरा मनुष्य समाज, वनस्पति एवं पशु समाज से ही जीवित है। समस्त आहार सामग्री उनसे ही प्राप्त करके सुख चैन से जीवन यापन कर रहा है। यदि वे त्याग करना

छोड़ देते तो मनुष्य समाज में हाहाकार मच जाता। इतना ही नहीं अभी तक पृथ्वी पृष्ठ पर मनुष्य समाज जीवित रहता या नहीं यह भी एक बड़ा प्रश्न हो जाता। यदि जीवित रहता तो उसका आकार प्रकार कुछ अन्य होता। इसलिए मनुष्य समाज भी इस निम्न श्रेणीय प्राणी जगत से उस आदर्श को अपना कर स्व-पर उन्नति के लिये सह अस्तित्व एवं संवर्धन के लिये त्याग धर्म को जीवन में उतारना चाहिये।

जो कूप अपना पानी दूसरों को देता है, उस कुये में शीतल, निर्मल, (स्वच्छ) पाणी अधिकाधिक भरता रहता रहता है, जिस कुये से पाणी लेना छोड़ देंगे तो उस कुये का जल अस्वच्छ हो जायेगा। दूषित-खराब हो जायेगा। उसमें कीड़े पड़ जायेंगे, अन्ततोगत्वा वह कुआँ ही एक दिन जल हीन हो जायेगा। इसी प्रकार जो जितना त्याग करता है, उसको उतना ही मिलता है।

So much give so much gain, no much give no mnch gain,

अधिक देने से अधिक मिलता है। कुछ नहीं देने पर कुछ नहीं मिलता है। बादल त्याग करता है। इस लिये बादल ऊपर रहता है वही समुद्र ग्रहण करता है, इसलिये

समुद्र में अगाध पानी होते हुये भी समुद्र का स्थान नीचे है। बादल त्याग करने से उसका पानी पवित्र है, मधुर है। किन्तु समुद्र की संगत करने से स्वयं भी समुद्र की तरह लवण युक्त होता है। इसी तरह और एक उदाहरण देखिये तराजू के जिस भाग में वस्तु रखते हैं, वह भाग नीचे-नीचे चला जाता है और जो भाग खाली रहता है, वह भाग ऊपर-ऊपर चढ़ता जाता है। अभी तक मानव समाज की जो उन्नति हुई है वह सब त्याग का ही फल है। त्यागी वीरों ने धन, जन-जीवन, समय देकर मनुष्य समाज को उन्नति के शिखर पर पहुंचाया है। धार्मिक क्षेत्र में त्याग के माध्यम से कला, संस्कृति, आदर्श के प्रतीक स्वरूप अनेक मंदिर, मसजिद, गिर्जाघर आदि बने हैं। सामाजिक क्षेत्र में अनेक धर्मशालायें, कूप, तालाब, औषधालय, अनाथाश्रम बनकर नर-नारायण की सेवा कर रहा है। शैक्षणिक क्षेत्र में अनेक स्कूल-विद्यालय, उच्च विद्यालय, विश्व विद्यालय, छात्रालय बनाकर ज्ञान पिपासु मनुष्य के लिये ज्ञानामृत पिलाकर तृप्त करा रहे हैं। इससे सिद्ध होता है—दान के बिना मनुष्य, मनुष्य समाज यहाँ तक की प्राणी समाज भी जीवित नहीं रह सकता है। इसलिये प्रत्येक प्राणी का परम कर्तव्य हैं कि यथा शक्ति, यथा

भक्ति, दान देकर स्व-पर समाज राष्ट्र का कल्याण करें।

अकिंचन धर्म—

मम आत्म द्रव्य बिना सर्व द्रव्य पर्यायम् ।
न किंचन् अस्ति मम धर्मः अकिंचनम् ।।

मेरे आत्म द्रव्य को छोड़कर अन्य समस्त जड़ चेतन द्रव्य एवं उनकी सम्पूर्ण पर्याये मेरी नहीं हैं। इसीलिये मेरे वे कभी नहीं हो सकते हैं। मेरा धर्म अकिंचन धर्म है। बाह्य स्थूल भौतिक द्रव्य तथा चेतन द्रव्य, अत्यंत पृथक् होने से वे कभी मेरे नहीं हो सकते हैं। इतना ही नहीं मेरे आत्मा के साथ क्षीर-नीरवत् मिला हुआ यह भौतिक शरीर मेरा नहीं है। इससे भी सूक्ष्म मन में उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष-मोह आदि विकार भाव भी मेरे आत्म स्वभाव नहीं हैं। इस प्रकार जो स्वतंत्र-स्वाधीन, शुद्ध, मेरा आत्मा है, वही मेरा सर्वस्व है। इस प्रकार आत्मा ही अकिंचनमय धर्म स्वरूप है।

ब्रह्मचर्य धर्म—

बाह्य द्रव्य संग त्यागं आत्म द्रव्ये रमणम् ।
ब्रह्मचर्यं जगत् पूज्यं सर्व धर्मे प्रधानम् ।।

सम्पूर्ण बाह्य द्रव्यों में रमण रूप ममत्व रूप या आशक्ति रूप संयोग संग को त्याग करके शुद्ध चिन्मय स्वरूप अनन्त सुख के धाम स्वरूप ब्रह्मरस में लीन होना ब्रह्मचर्य धर्म है।

यह ब्रह्मचर्य धर्म जगत् पूज्य है। ब्रह्मचर्य धर्म में अन्यान्य समस्त धर्म समाहित हैं, जैसे आकाश में समस्त द्रव्य समाहित हैं, इसी प्रकार ब्रह्म+चर्य=ब्रह्मचर्य, में सम्पूर्ण मूलगुण-उत्तरगुण अर्थात् अन्यान्य गुण समाहित हैं।

अष्टम परिच्छेद

आत्म धर्म–रत्नत्रय धर्म

सत् श्रद्धा ज्ञान वृत्तानि, धर्मः श्रेष्ठ मोक्षमार्गः ।
कुश्रद्धा ज्ञान वृत्तानि, अधर्मः यत् बन्धमार्गः ।।

सम्यक् श्रद्धान् सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र धर्म है; क्योंकि ये तीनों मिलकर मुक्ति का मार्ग बनता है । मिथ्या श्रद्धा–ज्ञान एवं चारित्र अधर्म है, संसार का कारण है, बन्धन का कारण है ।

सत् श्रद्धा ज्ञान वृत्तानि धर्मः श्रेष्ठ मोक्षमार्गः ।
आत्मस्वरूप त्रिण्यपि तेन आत्म मोक्षमार्गः ।।

यह रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चरित्र) धर्म है एवं मोक्ष मार्ग है, तीनों आत्मस्वरूप हैं । इसीलिये आत्मा ही मोक्षमार्ग है ।

मोक्ष मार्ग व्यवहारेण निश्चयेन स एव मोक्षः ।
तेन आत्मा रत्नत्रयः मोक्षमार्गः स्वयं मोक्षः ।।

रत्नत्रय को व्यवहार से मोक्षमार्ग कहते हैं, परन्तु निश्चय से रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है एवं स्वयं आत्मा ही मोक्ष है ।

जैसे—मंजिल पर चढ़ने के लिये सीढ़ी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मोक्ष महल पर आरूढ़ होने के लिये मोक्षमार्ग रूपी सीढ़ी की आवश्यकता होती है। सीढ़ी के दो पैर के लिये दो लम्बी लकड़ी एवं बीच के आडी, सोपान के लिये छोटी-छोटी लकड़ियां चाहिये। ये तीनों मिलकर ही सीढ़ी बन जाती है। एक या दो से नहीं बनती, बल्कि तीनों चाहिये, इसी प्रकार मोक्षमार्ग के लिये उपरोक्त तीनों आवश्यक हैं एक या दो से मोक्षमार्ग नहीं बनता है। सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान दो सीधी लकड़ी के समान हैं, तो सम्यक्चरित्र आड़े छोटी–छोटी लकड़ी के समान है। जैसे सीढ़ी के मध्यवर्ती सोपान के लिये दोनों पैर रूपी आलम्बन जरूरी है। उसी प्रकार सम्यक्चरित्र के लिये यथार्थ श्रद्धान एवं ज्ञान चाहिये। जिस प्रकार भात बनाने के लिये चावल, अग्नि, पाणी नितान्त आवश्यक हैं एवं एक के भी अभाव में भात नहीं बन सकता है। उसी प्रकार मोक्ष के लिये रत्नत्रय की आवश्यकता है।

सम्यग्दर्शनादि तीनों को रत्नत्रय कहते हैं। जिस प्रकार रत्न भौतिक द्रव्यों में मूल्यवान श्रेष्ठ एवं दुर्लभ है, इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत में इन तीनों का मूल्य सबसे श्रेष्ठ हैं, इसलिये इनको रत्नत्रय कहते हैं। यह रत्नत्रय बाह्य भौतिक जगत् में नहीं है। परन्तु आध्यात्मिक जगत् में अर्थात्

आत्मा में है । जैसे बर्फ के लिये पाणी साधन है और वह साधन ही परिणमन करके बर्फ रूपी परिणमन करता है, उसी प्रकार मोक्ष के लिये व्यवहार से ये साधन हैं, परन्तु अन्त में जाकर रत्नत्रय ही मोक्ष रूप बन जाता है । रत्न-त्रय आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्यों में अर्थात् बाह्य द्रव्यों में नहीं होने के कारण स्वयं आत्मा ही रत्नत्रय स्वरूप है एवं मोक्षमार्ग स्वरूप है ।

जैसे-एक बन्दी विश्वास करता है-मैं बन्धन-मुक्त हो जाऊँगा । तब वह कोई उपाय से उन बन्धन को काटता है एवं मुक्त हो जाता है । उसी प्रकार कर्मों से बन्धे हुये जीव विश्वास (श्रद्धा) करते हैं कि मैं कर्मों (संस्कारों) से बन्धा हुआ हूँ । बन्धन को काटने से मैं स्वतन्त्र सुख को प्राप्त करूँगा इस प्रकार जानना एवं उस बन्धन काटने के लिये प्रयत्न करना चारित्र हैं । इसी को ही मोक्ष मार्ग कहते हैं । मोक्ष के लिये केवल श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र नहीं चाहिये, परन्तु लौकिक एवं अलौकिक समस्त कार्य के लिये ये तीनों उपाय केवल आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हैं ।

रत्नत्रय की परिभाषा—

श्रद्धानं सत्य प्रतीतिः, सुज्ञानं तत्त्व निर्णयः ।
चरणं स्वरूपेण विपरीतेन अधर्मः ॥

सत्य की प्रतीति या विश्वास (आस्था) सम्यग्श्रद्धान है। तत्त्व का यथार्थ निश्चय करना उत्तम ज्ञान है। स्व-स्वरूप में आचरण करना उत्तम चारित्र है। इसके विपरीत रूप से अधर्म होता है अर्थात् सत्य की विपरीत प्रतीति अयथार्थ निर्णय स्व-स्वरूप से विपरीत आचरण अधर्म है।

सम्यग्दर्शन की परिभाषा—

मोक्ष मार्गः मोक्ष मार्गी, मोक्ष तत्त्वं सत्य शास्त्रं।
श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं अष्टागं, मूढ़ रहिताम् ॥

मोक्ष मार्ग, मोक्ष मार्गी, मोक्ष तत्त्व, सत् शास्त्र, सत् शास्त्रों के ऊपर विश्वास रखना, यथार्थ दर्शन है और वह सम्यग्दर्शन आठ अंग सहित एवं मूढ़ता रहित होता है। मोक्ष मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मोक्ष मार्गी अर्थात् साधु परमेष्ठी मोक्ष तत्त्व, शुद्ध आत्म तत्त्व, सत् शास्त्र, सर्वज्ञ वीतराग द्वारा प्रतिपादित, सर्व हितकारी अहिंसात्मक शास्त्र के ऊपर जो विश्वास (श्रद्धा) है, उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन तीन मूढ़ता रहित अर्थात् लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता और गुरु मूढ़ता रहित। अष्ट अंग सहित अर्थात् (१) नि:शंकित (२) नि:कांक्षित (३) निर्विचिकित्सा (४) अमूढ़ दृष्टि (५) उपगूहन (६) स्थितिकरण (७) वात्सल्य (८) प्रभावना अंग सहित होता है।

तीन मूढ़ता

(१) **लोक मूढ़ता**—धर्म भाव से नदी, समुद्र में स्नान करना, पत्थर, वृक्ष, दीवार, ईंट, देहरी, सर्प, गाय, सिलोडा आदि को पूजना लोक मूढ़ता है। धर्म मानकर पहाड़ से गिरकर मरना, नदी या समुद्र में डूबकर मरना, तीर्थ क्षेत्र में आत्म हत्या करना, जमीन के अन्दर बैठकर मिट्टी से शरीर को टांककर आर्त-रौद्र ध्यान से मरना, अग्नि में कूदकर मरना ये लोक मूढ़ता हैं, कांटे के ऊपर सोना, चारों तरफ अग्नि जलाकर बीच में बैठना मूढ़ता सहित विभिन्न काय क्लेश करना भी लोक मूढ़ता है, धर्म मानकर बलि आदि देना मूढता है। पति के मरने के पश्चात् सती बनने के लिये अग्नि में गिरकर मरना भी लोक मूढता है। इससे धर्म नहीं होता है, इसे धर्म मानना ही मूढता है।

(२) **देव मूढ़ता**— राग–द्वेष–मोह बिकार भाव से सहित स्त्री परिवार, अस्त्र–शस्त्र, राग–रंग सहित देवों को बर आदि अभिलाषा से पूजना देव मूढता कहा जाता है। रागी–द्वेषी, स्त्री सहित, अस्त्र-शस्त्र धारी सच्चे देव नहीं होते हैं। सच्चिदानन्द स्वरूप मोह बिकार

भाव से रहित, काम विकार से रहित, स्त्री–परिवार से रहित, अस्त्र–शस्त्र से रहित सच्चे देव होते हैं। इस प्रकार के भगवान को पूजना मूढ़ता नहीं है, परन्तु सच्ची श्रद्धा–भक्ति एवं गुणानुराग है।

(३) **गुरु मूढ़ता**—रागी-द्वेषी, स्त्री-कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति, अन्तरंग–बहिरंग परिग्रह सहित, मद्य, मांस आदि व्यसन धारी, गांजा, तम्बाकू आदि का सेवन करने वाले तथा श्वेत वस्त्र धारण करके अपने आपको साधु (श्रमण) समझने वाले धर्म पाखण्डियों को गुरु मानकर पूजन–सत्कार करना, दक्षिणा–देना, गुरु मूढता हैं। इस प्रकार मूढता को धर्म में व धर्म नीति में कहीं भी स्थान नहीं है। धर्म तो एक निर्मल आध्यात्मिक सोपान है। उस आध्यात्मिक सोपान में क्रमशः चढ़ने पर एक दिन यह आत्मा अपने आपको पा लेता है, यहीं उसकी पूर्णता होती है, जिसे सिद्ध कह सकते हैं। अतः उस सिद्धत्व की प्राप्ति के लिये अपनी कल्पना से स्वच्छन्द आचरण करने वाले साधु की उपासना करना ही गुरु मूढ़ता है, जो कि अधर्म है।

सम्यग्दर्शन के आठ अङ्ग

(१) निःशंकित अंग—

धर्म में, धर्म के फल में, सत्य में शङ्का नहीं करना निःशंकित अङ्ग है। धर्म से सदा सुख ही मिलता है, और धर्म ही शरण है, इस प्रकार शङ्का नहीं रखते हुये श्रद्धान करना निःशंकित अंग है।

(२) निःकांक्षित अंग—

धर्म करके उससे ख्याति-पूजा-लाभ की भावना नहीं करना ही निःकांक्षित अंग है।

(३) निर्विचिकित्सा अंग—

गुणि-ज्ञानियों को देखकर उनकी ख्याति-पूजा सुनकर घृणा नहीं करना किन्तु गुणों में आदर रखते हुये उनका सम्मान करना निर्विचिकित्सा अंग है।

(४) अमूढ़दृष्टि अंग—

सत्य की परीक्षा करके ही, उसको स्वीकार करना अमूढदृष्टि अंग हैं।

(५) उपगूहन अंग—

किसी धर्मात्मा व्यक्ति से किसी कारणवशात प्रमाद या अज्ञानता से या अन्य कारणों से भूल करने पर

उसको दूसरों के सामने प्रकट नहीं करना, उपगूहन अंग है।

(६) स्थितिकरण अंग—

किसी कारणवश धर्म मार्ग से च्युत धर्मात्मा को पुनः धर्म मार्ग में स्थित करना स्थितिकरण है।

(७) वात्सल्य अंग—

निःस्वार्थ भाव से धर्म प्रीति से धर्मात्माओं से गो-वत्स के समान प्रेम करना वात्सल्य अंग है।

(८) प्रभावना अंग—

सर्व जनहित के लिये सत्य धर्म का ज्ञान करना, प्रशिक्षण शिविर लगाना, धर्मोपदेश देना, धर्मात्मा पुरुषों को आने वाले कष्टों को आहार आदि दान देकर दूर करना प्रभावना अंग है।

सम्यग्ज्ञान—

श्रद्धानं सहित ज्ञानं येन आत्मा विशुद्ध्यते।
चारित्र साधकः ज्ञानं सुज्ञानं आत्म विज्ञानम्॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन सहित जो ज्ञान आत्म विशुद्धि का कारण है, तथा चारित्र का साधक ऐसे आत्म विज्ञान को सुज्ञान कहते हैं। श्रद्धान रहित विपुल ज्ञान सुज्ञान नहीं है,

परंतु श्रद्धान सहित किञ्चित् भी ज्ञान सुज्ञान है। क्योंकि श्रद्धान सहित ज्ञान से आत्म विशुद्धि होती है। जिस ज्ञान से आत्म विशुद्धि नहीं होती है। उसको सम्यग्ज्ञान नहीं कह सकते हैं। यह ज्ञान चारित्र के लिये साधक है। आत्म विज्ञान को सुज्ञान कहते हैं। आत्म ज्ञान रहित ज्ञान कुज्ञान है। सुज्ञान ही प्रमाण है।

सम्यग्ज्ञान के पांच भेद हैं—(१) मतिज्ञान (२) श्रुत ज्ञान (३) अवधि ज्ञान (४) मनपर्यय ज्ञान (५) केवल ज्ञान।

सम्यग्चारित्र—

पाप कर्म विवर्जितं आत्मामृतरसे रतः।
सुचारित्रः सर्व श्रेष्ठः साक्षान्मोक्षस्य साधकः॥

अर्थ—सुचारित्र पाप कर्मों से रहित होता है, आत्मामृत रुपी रस में लीन होना सुचारित्र है। यह सुचारित्र रत्नत्रय में सर्व श्रेष्ठ है, क्योंकि यह साक्षात् मुक्ति के लिये साधक है। व्यवहार से पांचों पापों का त्याग करके निश्चय से आत्मा का रसास्वाद लेना सम्यक् चारित्र है। यह सुचारित्र जहाँ पर है, वहाँ पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान निश्चित रहेगा ही, किन्तु जहाँ पर सम्यग्दर्शन एवं ज्ञान है, वहां पर यह चारित्र हो सकता है और नहीं भी हो सकता है।

जैसे बंधी का श्रद्धान है कि मैं बंधन में हूँ। बंधन काटने पर मैं मुक्त होऊँगा, किन्तु बंधन नहीं काटने के कारण अभी मुक्त नहीं हूँ, परन्तु जहां पर वह बंधन को काटकर मुक्त हुआ, उसका श्रद्धान-ज्ञान रहता ही है। सम्यग्दर्शन की पूर्णता क्षायिक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा चतुर्थ गुणस्थान में हो जाती हैं, तो भी पूर्ण रुप से बन्धन मुक्ति नहीं है। मात्र वह दृष्टि मुक्त है। सम्यग्ज्ञान की पूर्णता केवलज्ञान की अपेक्षा तेरहवें गुणस्थान में हो जाती है, परन्तु वहाँ पर भी पूर्ण रूप से मुक्ति नहीं है, क्योंकि अभी शेष अघातिया कर्म-नोकर्म का सद्भाव हैं। किन्तु जीवन मुक्त है, परन्तु जब चौदहवें गुणस्थान के अन्त में चारित्र की पूर्णता होती है, तत्क्षण ही पूर्ण रुप से बन्धन रहित होकर मुक्ति का पात्र होता है। तब ये सिद्ध निरंजन शाश्वतिक मुक्ति सुख को प्राप्त होते हैं। इसी कारण रत्नत्रय में सम्यक्चा-रित्र श्रेष्ठ है। एवं मोक्ष के लिये साक्षात् उपादान कारण हैं। शेष दो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान चारित्र के लिये साधक हैं, अतः मोक्ष मार्ग में इसे परम्परा से कारण भी कह सकते हैं।

श्रावकाचार

सप्त व्यसन वर्जितः अष्ट गुण सुमण्डितः ।
षड् कर्त्तव्ये सदा रतः श्रावकः मुनि साधकः ।।

सप्त व्यसन से रहित, अष्ट मूलगुणों से सहित, षड् कर्त्तव्य में सदा रत रहने वाला श्रावक मुनि अवस्था के लिये साधक स्वरुप है ।

सप्त व्यसन—

मद्य मांस द्यूतं वेश्यां पर्द्धिः चौर्यः पर नारीम् ।
दुर्गति निमित्त भूतानि, पापस्य कारणानि ।।

(१) मद्य सेवन (२) मांस भक्षण (३) जुआ खेलना (४) वेश्या गमन (५) शिकार खेलना (६) चोरी करना (७) परनारी रमण करना। ये सप्त व्यसन दुर्गति के लिये निमित्त भूत हैं। पापों के लिये कारण स्वरूप हैं। व्यसन का अर्थ दुःख है, जो दुःखों को देने वाले कार्य हैं, उन्हें व्यसन कहते हैं। इस प्रकार दुःखों को देने वाले कारण अनेक होते हुए भी सामान्य दृष्टि से उनको सात विभागों में विभाजित किया गया है। व्यसन का दूसरा अर्थ है, बुरी आदत जो मनुष्य को किंकर्त्तव्य विमूढ होकर, परावलंबी होकर, असंयमी होकर, हिताहित विवेक खोकर,

पुण्य-पाप को बिना माने अहित कर काम संतप्त करती है, उसको व्यसन कहते हैं। यह सप्त व्यसन, सप्त नरक के लिये द्वार स्वरूप है। इससे आर्थिक, नैतिक, शारीरिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, इहलोक एवं परलोक की क्षति होती है। विवेकी प्रबुद्ध सुख इच्छुक जीव विशेष भयंकर अग्नि से भी अत्यन्त विध्वंसकारी जानकर सम्पूर्ण व्यसनों का पूर्ण रूप से त्याग करें।

(१) **मद्य व्यसन—**

मद्येन मोहित मन विस्मरति धर्मं च सदाचरणं।
तेन पापास्त्रवं असंख्यं सूक्ष्म जीव वधने च ।।

मद्य पान करने से मन मोहित हो जाता है, धर्म को भूल जाता है, तथा सदाचरण को भी विस्मरण कर देता है, उससे पापास्त्रव होता है। मद्य में स्थित असंख्य सूक्ष्म जीव के वध से पाप बंध होता है।

चावल, महुआ, गूड आदि को घडे में भरकर उसको जमीन में गाढ़ देते हैं। अनेक दिनों में चावलादि सड़कर उस में अनेक लट आदि त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं, पुनः उसको ऊबाल करके मद्य निकालते हैं, इसलिये मद्य त्रस जीवों का रस ही है। मद्य के वर्ण सदृश्य असंख्यात सूक्ष्म जीव प्रत्येक समय मद्य में रहते हैं। मद्य-पान से ज्ञान तन्तु

शिथिल हो जाते हैं, जिससे मन मोहित होकर स्मरण शक्ति को विवेक शक्ति को खो डालता है। जिससे वह सदाचार को भूल जाता है। पागलों के समान कुछ न कुछ बकता रहता है, माँ, बहिन, स्त्री में किसी प्रकार का भेद नहीं देखता है, अनैतिकता पूर्ण आचरण भी कर लेता है, तथा दूसरों को अपशब्द भी कहता है, मार पीट भी करता है, अपना कर्तव्य सुचारु रूप से पालन नहीं कर पाता है। इससे पापास्त्रव होता है। मद्य में स्थित जीवों के घात से भी पापास्त्रव होता है। शरीर मन-ज्ञान तंतु, स्नायु, पाचन शक्ति मद्य से क्षीण होने के कारण शरीर में अनेक रोग एवं अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते है। जिससे वह क्षीण शक्ति होकर विशेष कोई कार्य नहीं कर पाता है, वह विशेष अर्थोपार्जन नही कर पाता है। अर्थाभाव से बाल बच्चे अशीक्षित रहते है एवं खाद्य अभाव से योग्य पोषण भी नहीं हो पाता हैं, इससे संतान को भी बहुत बड़ी क्षति पहुँचती है। मद्यपान से भी अर्थ (धन) व्यर्थ में ही खर्च होता है। अज्ञानी मनुष्य अर्थ को देकर मद्य पीकर अनेकों अनर्थों को निमन्त्रण देता है। एक पशु भी जान बूझकर अनर्थ अर्थात् विपत्तियों को स्वीकार नहीं करता है, परन्तु मद्यपान करने वाला जान बुझकर विपत्तियों को निमंत्रण देकर स्वीकार करता है, इस दृष्टि से वह पशु से भी पशु है।

केवल मद्यपान इस व्यसन में गर्भित नहीं है, इस के साथ-साथ विदेशी ब्रांडी-विस्की, रम, ताड़ी, गांजा, भांग, चाय, काफी, चरस, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, गुडाखू, पान पराग आदि-आदि मद्य व्यसन के अन्तर्गत होते हैं। उपरोक्त नशीले पदार्थों में अनेक विषाक्त रसायन पदार्थ रहते हैं, जिससे टी.बी. कैंसर, रक्तचाप, दमा, खांसी, कब्जियत, बदहजमी, सिर दर्द, अलसर आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, बीड़ी-सिगरेट-जर्दा-तम्बाकू में निकोटिन विष रहता है। चाय में कैफीन विष रहता है, मद्य में अल्कोहल विष रहता है, वे विष शरीर को बहुत क्षति पहुँचाते हैं और उनसे कैंसर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

महात्मा गांधी स्वतन्त्रता के पहले बोलते थे एवं उनकी तीव्र भावना थी कि भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात् मुझे सर्व प्रथम एवं सर्व श्रेष्ठ कुछ करना है, तो वह है भारत से पूर्ण रूप से मद्य-निषेध करना। महात्मा गांधी यहां तक कहते थे कि—(Tea is white poison) चाय सफेद विष है। यदि चाय को जब सफेद विष मानते थे, तो क्या मद्यादि साक्षात् विष है—ऐसा नहीं कहते होंगे? इसे आप सहज ही समझ सकते हैं। परन्तु अत्यन्त शर्म की बात है कि वर्तमान की स्वतन्त्र सरकार स्वच्छन्द होकर

स्वयं मद्य फैक्ट्री खोलकर, मद्य दुकान प्रत्येक गांव में खोलकर भारत की जनता को विष पिलाने में दिन-रात कार्यरत है।

सरकार सोचती है कि इससे कुछ आर्थिक लाभ देश को होता है, परन्तु मूढ़ सरकार नहीं जानती हैं कि वह अर्थ किसका हैं और उस मद्य से जो शारीरिक–मानसिक क्षति होती है। उस क्षति को पूर्ण करने के लिये सरकार को एवं जनता को अर्थ व्यय करना पड़ता है। उस लाभ की अपेक्षा व्यय कितना अधिक है। स्वास्थ्य के लिये सरकार अस्पताल खोलती है एवं रोगी बनाने के लिये जनता को मद्य पिलाती है। इसलिये भारत की स्वतन्त्र सरकार को तथा प्रादेशिक शासकों को मद्य के प्रचारक कुछ पूंजीपतियों को मद्य का दुःपरिणाम जानकर उसका सम्पूर्ण शासकीय क्षेत्र में कानून लगाकर निषेध करना चाहिये। तथा प्रजा को भी स्वयं प्रवृत्त होकर स्व इच्छा से मद्य तथा अन्य-अन्य नशीली वस्तुयें सर्वथा त्याग कर देनी चाहिये।

(२) मांस–व्यसन

वृक्षेन फलति मांसं, महासत्त्व घातेन च मिलति।
प्रत्येक अवस्थायां निवसन्ति, तज्जाति निगोदानाम्॥
मांस भक्षणेन द्रव्य-भाव हिंसा सर्वत्र भवति।
सः उभयो नारको, सर्वत्र प्राप्यति अनन्त दुःखम्॥

मांस वृक्ष में नहीं लगता है, मांस के लिये त्रस कायिक बड़े जीवों का घात करना पड़ता है। उस मांस में कच्ची अवस्था में, पक्व अवस्था में एवं पकती हुई अवस्था में उस जाति के कोट्यावधि निगोदिया जीव रहते हैं। मांस-भक्षण से द्रव्य-हिंसा एवं भाव-हिंसा सदा सर्वदा होती है। मांस भक्षी जीव द्रव्यतः भावतः तथा तात्कालिक एवं भावी नारकी हैं। वे सर्वत्र अनन्त दुःख को प्राप्त करते हैं।

मांसाहार से हानि—

शाकाहारी के लिये जैसे धान्य-फलादि वनस्पति से सरलता से प्राप्त होती है। उसी प्रकार मांस कोई भी वनस्पति से नहीं मिलता है। मांस के लिये बकरा-गाय-भैंस-मुर्गा-मछली आदि बड़े-बड़े जीवों को निर्दय भाव से कत्ल करना पड़ता है। कत्ल के बाद भी वह मांस जीव से रहित नहीं है किन्तु मांस के प्रत्येक कण में जिस जीव का मांस है, उस जीवजाति के सूक्ष्म निगोदिया जीव असंख्यात कोटि प्रत्येक समय में रहते हैं। जैसे उदा,-रूप में गाय का मांस है, उस मांस में गौ-जातीय पंचेन्द्रिय सूक्ष्म निगोदिया जीव होते हैं, वे मांस को पकाते समय भी रहते हैं, पक्व होने के बाद भी अर्थात् पकाने के बाद भी रहते हैं। मांस को छूने मात्र से अनेक जीव मर जाते हैं। इसी प्रकार

प्रत्येक समय में असंख्यात जीवों का घात होता रहता है। यह हुई द्रव्य हिंसा। बिना क्रूर निर्दय परिणाम से मांस के लिये कोई जीव का घात नहीं हो सकता है और भावों में जो कठोरता (निर्दय भाव) है, वही महान् भाव–हिंसा है। इसलिये मांस भक्षण से द्रव्य–हिंसा एवं भाव–हिंसा होती है।

कोई जीव विचार करे कि स्वयं मरे हुए जीव के मांस के खाने में कोई दोष नहीं है, कि उपरोक्त वर्णित तज्जातीय जीवों का सद्भाव होने से एवं उन जीवों का घात होने से निश्चित रूप से दोष लगता ही है।

कोई कहेगा बना हुआ मांस खरीदकर खाने पर कोई दोष नहीं लगेगा, परन्तु उस मांस में भी असंख्यात जीव रहते हैं जिस मांस को बाजार से खरीदकर लाये हैं। और उन जीवों की हिंसा होने से दोष निश्चित रूप से लगता ही है। इस प्रकार जो वधिक मनुष्य, जीव वध करता है, वह तो हिंसा का भागी ही है, परन्तु जो मांस पकाता है वह भी हिंसा का भागी है। जो मांस परोसता है, वह भी दोष का भागी है, जो मांस खाता है, वह भी दोष का भागी है।

कोई–कोई जिह्वा–लोलुपी, कुतर्की, मूढ़ पुरुष मानते हैं कि आजकल का कृत्रिम अण्डा (हायब्रेड अण्डा) जिसमें से

जीव उत्पन्न नहीं होता है, वह अण्डा मांस नहीं है, शाकाहार है। परन्तु ऐसे अज्ञानी नहीं जानते हैं कि वह अण्डा रज और वीर्य के संयोग से बना है, मुर्गी के गर्भ में बढ़ा, गर्भ से अण्डा निकलने के बाद भी कुछ समय तक वृद्धि को प्राप्त होता है, यदि जीव नहीं होता तो वह अण्डा बढ़ता कैसे ? बढ़ने के कारण, अर्थात् वृद्धि होने के कारण उसमें जीव निश्चित है, परन्तु उसमें इतनी जीवनशक्ति नहीं है कि उससे मुर्गी का बच्चा उत्पन्न हो सके। जैसे कुछ वृक्ष की शाखा को कलमी करने से नवीन वृक्ष उत्पन्न होते हैं और कुछ से उत्पन्न नहीं होते हैं, किन्तु दोनों प्रकार की शाखा वृक्ष से संयुक्त है। दोनों शाखायें बढ़ती हैं, दोनो पत्ते पुष्प-फल धारण करते हैं। कदाचित् आपके मतानुसार पक्षी का जीव नहीं है, तो भी उस मांस में तज्जातीय जीव करोड़ों की संख्या रहते हैं। अण्डा भक्षण में उन जीवों का घात होता ही है।

प्रत्येक मांस में क्लोरिन आदि अनेक विषाक्त तत्त्व रहते हैं। जिससे केंसर, टी. बी., रक्तचाप आदि रोग होते हैं।

मनुष्य शरीर के अवयव यथा दांत, जिह्वा, आंत, नाखून आदि शाकाहारी प्राणी के समान हैं, मांसाहारी

प्राणियों में जो शरीर के अवयव होते हैं, वे अवयव शाकाहारी प्राणियों से अलग प्रकार के होते हैं। मांसाहारी प्राणियों के नाखून तीक्ष्ण, लम्बे एवं शक्तिशाली होते हैं, जिससे वे शिकारी प्राणी को पकड़कर चीर-फाड़ कर सकें, किन्तु मनुष्य का नाखून उस प्रकार का नहीं है। मांसाहारी पशुओं के दाँत अत्यन्त तीक्ष्ण नोंकदार रहते हैं, जिससे वे शिकार को फाड़कर खा सकें, परन्तु मनुष्य के दाँत शाकाहारी गाय-भैंस के समान चपटे हैं। माँसाहारी प्राणी पानी को जीभ से चाट-चाटकर पीते हैं, परन्तु मनुष्य शाकाहारी प्राणियों के समान मुख में पानी भरकर पीता है। माँसाहारी प्राणियों की जिह्वा अत्यन्त रूखी करकसी एवं कांटेदार रहती है। जिससे हड्डी से माँस चबाकर खा सकता है, परन्तु मनुष्यों की जिह्वा चिकनी एवं कोमल रहती है। माँसाहारी प्राणियों की आंतें छोटी रहती हैं। किन्तु मनुष्य की आँतें शाकाहारी प्राणियों की आँत के समान लम्बी रहती है। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति से भी मनुष्य शाकाहारी प्राणी है।

शाकाहारी भोजन करने से अर्थ व्यय कम होता है एवं माँसाहार में अर्थ व्यय अधिक होता है। एवं एक गाय से तो जीवन भर हजारों लीटर दूध प्राप्त कर सकते हैं। उससे दही, मट्ठा, घी आदि उत्तमोत्तम अमृत समान

प्राणदायक सात्विक आहार प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु गाय को मार करके मांस का प्रयोग, मात्र एक-दो दिन के लिये ही कर सकते हैं। जिस गाय से जीवन भर अनेक संतानें हजारों लीटर दूध, अनेक टन प्राकृतिक स्वरूप उत्तमोत्तम खाद उत्पन्न हो सकते हैं, उस गाय को मार कर उससे अपना पेट भरना कितनी कृतघ्नता है ?

प्रकृति में एक प्रकार समतोल रहता है। समतोल के अभाव में एक विक्षेप उत्पन्न होता है। जिससे अनेक प्राकृतिक विप्लव होते हैं, जैसे अनावृष्टि दूषित वायु मण्डल, अनेक रोगों की उत्पत्ति आदि उदाहरण स्वरूप-कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने खेत के लिये एवं औद्योगिक कार्य के लिये वन सम्पत्ति को काट डाला। वनस्पतियों की कमी से ऑक्सीजन (प्राण वायु) का अभाव हुआ। उष्णता बढ़ी जिससे वर्षा होना कम हो गया। वातावरण दूषित हो गया। रोग की वृद्धि हुई वनस्पति संपत्ति का ह्रास हुआ। वन्य पशुओं का अभाव होने लगा। इन सब उपरोक्त दुर्घटना को सरकार ने अनुभव करके पुनः वृक्षारोपण प्रारंभ किया। यदि केवल निम्न श्रेणीय जीवों के घात से इतना विप्लव हो सकता है, तो क्या अभी जो सरकार पंचेन्द्रिय जीव गाय, बकरा, सूअर, मूर्गा, मछली आदि का निर्मम भावों से अरबों की संख्या में घात कर रही हैं, उससे क्या

सफलता मिल सकती है अर्थात् तीन काल में भी नहीं मिल सकती है ।

मांस से रोग—

मांस में Cholesterol (कोलेस्टरोल) विष रहता है । इससे Blood Pressure (रक्तचाप) बढ़ता है एवं सांस फूलने लगती है, इसमें निहित तत्व C.27.H.46.O है। मांस से कैन्सर आदि भयंकर रोग होते हैं ।

जलाशय से मछली, मेढक आदि को मारने से पानी दूषित एवं कीडों से भर जाता है, क्योंकि मछली आदि दूषित अंश को खाकर पानी को स्वच्छ रखते हैं । अस्वच्छ पानी के सेवन से रोग होते हैं । पक्षियों को मारने से विषाक्त कीडों की संख्या बढ़ती है । सिद्धांततः सम्पूर्ण विश्व प्रकृति का शरीर है । वनस्पति, पशु, पक्षी, मनुष्य, जलवायु आदि प्राकृतिक शरीर के अवयव स्वरूप हैं । जैसे-एक मनुष्य के एक हाथ को कष्ट देंगे तो दूसरा हाथ नहीं सोचेगा कि मुझे तो कष्ट नहीं दे रहा है तो मैं उसका क्यों विरोध करूं ? परन्तु शरीर एक होने से जिसको क्षति नहीं पहुँच रही है, वह हाथ भी शरीर की रक्षा के लिये एवं सुरक्षा के लिये विरोध करेगा, प्रतिकार करेगा । इसी प्रकार प्रकृति के किसी भी अवयव को यदि मनुष्य क्षति

पहुंचाता है, तो मनुष्य को जान लेना चाहिये कि सम्पूर्ण प्रकृति उसके विरोध में विप्लव करेगी और मनुष्य समाज को ध्वंस करके ही रहेगी।

केवल मांस खाना हिंसात्मक नहीं है, परन्तु किसी प्रकार की चर्म की वस्तु जैसे—चप्पल, बेग, बेल्ट आदि प्रसाधन की वस्तु जैसे—नख पॉलिश, लिपिस्टीक, सैम्पू, इत्र, सेंट, स्नो, पावडर, मूल्यवान साबुन आदि जीव के शरीरी अवयवों से बनते हैं, इसलिये इनका प्रयोग करना भी हिंसा है।

मद्य मांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्द भक्षणम्।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां, तीर्थ यात्रा जपस्तपः॥
(महाभारत)

मद्यपान, मांस भक्षण, रात्रि भोजन, जमी कन्द सेवन (आलू, प्याज, मूली, गाजर, लसुन आदि) जो करता है, अर्थात् खाता है उसकी तीर्थ यात्रा, जप-तप सब वृथा हो जाते हैं।

यावंति पशुरोमाणि पशु गात्रेषु भारतः।
तावद्वर्ष सहस्राणि पच्यते पशु घातकाः॥
शुक्र शोणित संभूतं गो मांस खादते नरः।
जलते कुरूते शौचं हसंते तत्र देवताः॥

अस्थिनि वसति रुद्रस्तथा मांसे जनार्दनः ।
शुक्रे वसति ब्रह्मा तस्मान्मांस न भक्षयेत् ।।
(विष्णु पुराण)

पशु में जितने रोम रहते हैं, उस पशु के घात से उस पशुघातक को उतने ही हजार वर्ष नरक में कष्टों को प्राप्त करना है । जैसे एक जीव में १०० रोम हैं, तो उस पशुघातक को १००×१०००=१,००,००० (एक लाख) वर्ष तक नरक में यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी । विचार करो कि एक जीव में कितने करोड रोम रहते हैं, तो उस पशु-घातक को नरक में कितने वर्ष तक दुःख उठाना पड़ेगा ।

प्राणियों के शरीर का रज-वीर्य से निर्माण होता है, जो मांस-अण्डे वगैरह, खाता है, वह दूषित रज-वीर्य को खाता है । माँस खाकर ऊपर से पानी से शरीर को शुद्धि करने से कभी भी शुद्धि नहीं हो सकती है । इसलिये मांस भक्षी जल में शुद्धि करता है, तब देवता लोग उसे देखकर हंसते है ।

जीव की हड्डी में रुद्र वास करते हैं । मांस में विष्णु वास करते हैं । शुक्र में ब्रह्मा वास करते हैं । इसलिये मांस नहीं खाना चाहिये ।

यूपं छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रूधिर कर्दमम् ।
यद्येवं गम्यते स्वर्गं नरकं केन गम्यते ।।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं सुसंयमः ।
मद्य मांसादि त्यागश्च तद्धि धर्मस्य लक्षणम् ।।
(महाभारत, शांति पर्व)

अहिंसा सत्यमस्तयं ब्रह्मचर्यं सुसंयमं ।
मद्य-मांस-मधु त्यागो रात्रि भोजन वर्जनम् ।।
(मारकण्डेय पुराण)

जो यूप (यज्ञ की विशेष लकड़ी) को छेदकर, पशु को मारकर, रूधिर को कीचड़ बनाकर यदि स्वर्ग जावे तो नरक किस पाप से जायेगा ?

., अचौर्य, ब्रह्मचर्य, उत्तम संयम, मांसादि का त्याग धर्म का लक्षण है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रम्हचार्य, उत्तम संयम, मद्य, मांस, मधु, सेवन त्याग, रात्रि भोजन त्याग धर्म है ।

भांग मछली सुरापान, जो-जो प्राणी खाये ।
तीर्थं बरत अरू नेम किये, सबे रसातल जाये ।।
(कबीर)

भांग खाना, मछली खाना, सुरापान, जो-जो प्राणी करते, हैं वे कितने भी तीर्थ यात्रा करें, व्रतादि पालन करें, नियम धारण करें तो भी वे सब रसातल (नरक) में जायेगें ।

मुसलमान मारे करद, हिन्दू मारे तलवार ।
कह कबीर दोनों मिली, जाये जम के द्वार ।।

मुसलमान करद (चाकू से गला काटता) करता है, हिंदू तलवार से काटता है, कबीर कहते हैं कि मुसलमान और हिंदू दोनों मिलकर यम के द्वार पर जायेंगे।

मांसहारी मानव, परतछ राक्षस डांग।
तिन की संगती मत करो, परत भजन में भंग।।

जो मांस खाता है, वह प्रत्यक्ष राक्षस है, उसकी संगति मत करो, क्योंकि उससे भजन-कीर्तन में, प्रभु नाम गाने में, धर्म कार्य में विपत्ति आती है।

है भला तेरा इसी में, मांस खाना छोड दें।
इस मुबारक पेट में, कब्र बनाना छोड दें।।

इसी में तेरी भलाई है कि तू मांस खाना छोड़ दे। मांस खाने से तेरा पवित्र पेट कब्रखाना बन जाता है। तू नहीं खायेगा तो तेरा पेट कब्रखाना नहीं बनेगा।

जो शिर काटे और का, अपना रहे कटाय।
धीरे-धीरे नानका, बदला कहीं न जाय।।

जो दूसरों का सिर काटता है, उसका सिर एक न एक दिन कट जाता है। सिख के आदि गुरु नानक देव कहते हैं कि बदला कभी चुकता नहीं है।

जो रक्त जगे कापडे, जामा होवे पलीत।
जे रक्त पीवे मानुषा, तिन क्यों निर्मल चित्त।।

कपडा में रक्त लगने पर कपड़ा अपवित्र हो जाता है और जो मनुष्य रक्त पीता है, मांस खाता है, उसका मन पवित्र कैसे हो सकता है ?

Thou shan't kill (ईसा मसीह)

कोई भी प्राणी को मत मारो ।

हिंसा प्रसूतानि सर्व दुःखानि ।

हिंसा सम्पूर्ण दुःखों को जन्म देती है ।

Animal food for those,
Who will fight and die,
And vegetable food for those,
Who will live and think.

मांस आहार उनके लिये है, जो लडेंगे एवं मरेंगे । शाकाहार उनके लिये है, जो जीवित रहेंगे एवं चिन्तन करेंगे ।

हिन्दू धर्म में कहा गया है कि पहले धर्मात्मा शाकाहारी ब्राह्मण धर्म शक्ति से आकाश में उड़कर गमन करते थे, परन्तु ब्राह्मण लोगों के मांस खाने से धार्मिक शक्ति क्षीण हो गयी तब से ब्राह्मण लोग जमीन पर चलने लगे । इससे सिद्ध होता है कि मांस नहीं खाने से कितनी अध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है और खाने से कितनी क्षति होती है ।

सम्पूर्ण जीवन में जो मांस को विष तुल्य त्याग कर देता है। वशिष्ठ भगवान कहते हैं कि वह स्वर्ग सम्पत्ति को प्राप्त करता है। यथा—

यावज्जीवं च यो मांसं विषवत्परिवर्जयेत्।
वशिष्ठो भगवान्नाह प्राप्नुयात् स्वर्ग सम्पदम्॥

अन्यत्र भी कहा है—

रक्त ‐ात्र प्रवाहेण स्त्री निंदा जायते स्फुटं।
द्विधा तुजं पुनर्मांस पवित्रं जायते

ऋतुवती के समय में अर्थात् रज निकलने से स्त्री अपवित्र हो जाती है और निश्चय से निंदनीय होती है। परन्तु मांस, रज एवं वीर्य से बनता है, तब मांस पवित्र कैसे हो सकता है? कदापि नहीं हो सकता है, क्योंकि इसमें तो दो अपवित्र वस्तुओं का मिश्रण है।

(३) द्यूत (जुआ) व्यसन—

द्यूतेन राग-द्वेषं अनृतं कलहं हिंसनं च।
तेन पापा स्त्रवं पपेन च अनन्त दुःखम्॥

जुआँ खेलने से राग द्वेष उत्पन्न होता है, झूठ बोलना पड़ता है, हिंसादि होती है। जिससे पापास्त्रव होता है, पाप से अनंत दुःख मिलता है।

जुआं में जीत होने से जुए के प्रति आसक्ति होती है। जिससे वह और जुआं खेलता है। जुआंरियों में परस्पर द्वेष उत्पन्न होता है, जुआरी लोग अपनी जय के लिये बहुत ही झूठ बोलते हैं, जिससे कहल उत्पन्न होता है, उस कहल के कारण परस्पर में मार पीट भी होती है, जिससे हत्या भी होते हुये देखे जाते हैं। इन्हीं कारणों से पाप बंध होता है, जिससे इहलोक व परलोक में अनन्त दुःख उठाना पड़ता है।

महान धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर ने भी जुआं के कारण राज्य सहित द्रोपदी को भी दांव पर लगाया था। जिससे उनको १२ वर्ष राज्य त्याग कर जंगल में रहना पड़ा था। तथा एक वर्ष अज्ञात वास में रहना पड़ा था। इतना ही नहीं कुल वधु सति द्रोपदी को दुष्ट दुःशासन ने भरी सभा में नग्न करने के लिये प्रयत्न किया था। महाराज नल ने भी सर्व गुण सम्पन्न होने पर भी मात्र एक जुआं के दुर्व्यसन में पड़कर वनवास में दर-दर ठोकरे खायी थीं। पहले राजा लोग जुआं में सर्वस्व गँवाकर दर-दर के भिखारी बन जाते थे। इस प्रकार पुराणों में देखने में आता है। इस प्रकार जुआं खेलना बहुत ही अनर्थ का कारण है।

लॉटरी का टिकट लेना, सट्टा खेलना, शर्त लगाना, ताश खेलना आदि सब जुआँ के ही विविध अंग हैं ।

(४) वेश्यारमण व्यसन—

ब्रह्म भावस्य घातकः अनीति भावस्य मूलं ।
इह-पर लोक दुःखदं पुण्य नारीणं संभोगम् ॥

वेश्या गमन करने से ब्रह्मचर्य भावना का घात होता है, वेश्या गमन अनीति का मूल है, इह लोक, परलोक में दुःखदायी है ।

वेश्या को पण्यस्त्री भी कहते हैं । वे स्त्रियां पैसा लेकर अपने शील को पर पुरुष को बेंचती हैं । रुपया के लोभ से वे रोगी, पापी, हीन, दीन व्यक्तियों के साथ भी भोग करती हैं । जिससे उन की योनि में अनेक संक्रामक रोग होते हैं । उनके साथ जो भोग करता है, उसके लिंग में मरण काल समान तीव्र वेदना होती है । वह पर स्त्री गामीनि पुरुष लज्जा के कारण किसी को उस रोग के बारे में नहीं बताता है, जिससे उसका औषध-पानी होना भी कठीन हो जाता है । इस प्रकार वह पुरुष रुपया देकर रोगों को खरीदता है । उसे सब कोई घृणा की दृष्टि से देखते हैं । वेश्या में आसक्त होकर अपनी सारी सम्पत्ति दे डालता है । जिससे गरीबी के दिन गुजारता है, परिवार के लोगों को कष्ट में डालता है । तद्भव मोक्ष गामी,

स्वाध्याय प्रेमी, ज्ञानी चारुदत्त जिसने विवाह के पश्चात् अपनी नव युवति सुन्दरी स्त्री को देखा तक नहीं था, वही चारुदत्त वसंत सेना नामकी वेश्या के कारण १२ वर्ष तक वेश्या के घर में रहा और ३२ लाख स्वर्ण दीनारें खो डाली एवं अन्त में संडास गृह में उसे डलवा दिया गया। इस प्रकार धन, यौवन, धर्म, स्वास्थ्य, शील आदि को नाश करने वाला वेश्या गमन का त्याग करना चाहिये।

महान् दुःख की बात है कि कुछ प्रादेशिक सरकार (महाराष्ट्र सरकार) वेश्यावृत्ति को बढ़ावा देने के कारण वेश्याओं की संख्या बहुत बढ़ रही है। परंतु विवेकी सरकार तथा जनता को चाहिये कि इस का पूर्णरूप से विरोध करें, जिससे देश में शील, न्याय नीति कायम रहे।

वेश्या के यहाँ आना जाना उसका सहवास करना, वेश्याओं का नृत्य देखना, उनका गाना सुनना, उनसे लेन-देन करना आदि वेश्या गमन के ही अंग हैं।

वेश्यागमन का दुष्परिणाम—

जो भौतिकवादी, विलासप्रिय अमेरिका आदि देश शील का मखौल उड़ाते थे, वे आज एड्स रोग के कारण शील को महत्त्व देने लगे हैं। नीतिकारों ने कहा है—

"आर्त्त नराः धर्म परा भवंति"

दुःखी जन धर्मपरायण होते हैं ।

दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करे, सो दुःख काय को होय ।।

यह एड्स रोग वेश्या गमन से होता है । इसका वर्णन नवभारत टाईम्स में २६ मई १९८८ में आया हुआ विषय यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

लेख का नाम 'यौन कांतिका अंत' । ''जान देने और दिल लुटाने के मुहावरे आज सच्चाई बन गये हैं । मनचलों की दुनियां में खलबली मच गई है । रंगीन रातें संगीन बनती जा रही है । लाल बत्ती वाले इलाकों में आशिक और माशूक बे-मौत मरे जा रहे हैं । तमाम वेश्याएँ विष कन्याओं में बदलती जा रही हैं । परकिया प्रेम की दुहाई देने वाले घर लौट रहे हैं । कौमार्य और ब्रह्मचर्य जैसी गई-गुजरी बातें फिर से श्रद्धा की पात्र हो गई हैं । जो पश्चिमी देश आधुनिकता के नाम पर उन्मुक्त यौन उत्शृंखलता में आकंठ डुबे हुये थे, वे आज अपने किए पर पछता रहे हैं । तथा कथित यौन क्रान्ति आखरी सांसें गिन रही है ।'

यह अजीव जीव एक किस्म का वायरस यानी विषाणु

है। जितना छोटा उत्तना खोटा है। यह वायरस इतना छोटा है कि इसका व्यास १०० नेनो मीटर या ०.१ मायक्रो मीटर मापा गया है। ऐसे सूक्ष्माति सूक्ष्म जीव ने आज लगभग १३३ देशों में एड्स का असाध्य रोग फैलाकर ऐसी देहशत पैंदा की है कि उसके सामने परमाणु युद्ध का आतंक भी नहीं रह गया है। इस रोगाणु का शोध १९८३ में पेरिस का डॉक्टर लुक मोटारनीर ने और १९८४ में अमेरिका के डॉक्टर रॉबर्ट गैली ने किया है।

एड्स का वायरस आधुनिक समाज में व्याप्त हिंसा और आतंक का मानो वामन अवतार है। एड्स का वायरस मानव देह के अन्दर खून में पलता है, पहले यह हमारे खून की प्रतिरक्षा प्रणाली के पहरेदारों को दबोचता है, उसके बाद चाहे फ्ल्यू हो या निमोनिया किसी भी रोगाणु के खिलाफ रोगी के खूनमें ऐंटीबाडी नहीं बनती Resistance grow नहीं करता है। एक बार पूरे खून में एड्स के विषाणु फैल जाय तो चंद महिनों में ही मौत रोगी को अपने पंजे में दबोच लेती है। अमेरिका में सतरादिक में ब्लू फिल्मों के बेताज बादशाह माने जाने वाले जॉन हेल्मस का १४००० रमणियों का रिकार्ड है। जुलाई १९८६ में एड्स के वायरस के चपेट में आये और मार्च १९८८ में निमोनिया ने प्राण लिये। अक्सर, अतिसार,

बुखार और वजन घटते जाने से एड्स के लक्षण प्रगट हो जाते हैं। धीरे-धीरे ओजहीन होता हुआ एड्स रोगी सूख-कर कांटा हो जाता है। एड्स का वायरस सबसे पहले दिमाक पर हमला बोलता है और रोगी सनक का शिकार हो जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संघठन के अनुसार अकेले अफ्रिकी देशों में ही २० लाख से अधिक स्त्री-पुरुषों के देह में एड्स का वायरस पल रहा है। सारी दुनियां में ५० लाख से १ करोड़ लोग इस घातक वायरस के जीते-जागते मनमाने घूम रहे है। इनमें से १५ लाख अकेले अमेरिका में हैं।

युनिसेफ की ताजा रपट के अनुसार अगले दशक में ५० लाख ३ करोड़ तक बच्चे भी एड्स के शिकार हो जाएँगे। इस समय भी ६ हजार बच्चे जाम्बिया में और १४००० अमेरिका में एड्स से पीड़ित हैं, इनको यह रोग माता-पिता से लगा है। स्तनपान से उतना खतरा नहीं है। केवल दो बच्चों को यह रोग एड्सग्रस्त माँ के स्तनपान से पहुंचा है। रक्त शुक्राणु और खराब सुईयों के कारण भी एड्स फैलता है।

तथा कथित यौन-क्रांति आखिरी सांसें गिन रही है। दुनियां भर के दुराचार के अड्डों मैं सनसनी फैल गई है। जो काम संत-महात्मा नहीं कर पाये, वह 'एड्स' की बीमारी फैलाने वाले एक निहायत क्षुद्र प्राणी ने कर दिखाया।

इसीलिये एक बार फिर पश्चिमी स्कूलों में नैतिकता की दुहाई दी जा रही है।

मैथुन में हिंसा—

डॉ सुरेशचन्द्र जैन ने एक बार बताया था 'मेडिकल शोध से सिद्ध हुआ है कि २५ बिन्दु वीर्य में ६० मिलियन (६ करोड़) से ११० मिलियन तक सूक्ष्म जीव रहते हैं। उन्होंने स्वयं सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से वीर्य में जीवों को चलते-फिरते हुये देखा है। जीवों का आकार प्रायः मनुष्य जातीय सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक जीव के समान हैं। माता का रज एसिड़ (अम्ल) गुण युक्त होता है। पिता का वीर्य आलक्लाइन (क्षार) गुण युक्त होता है। संभोग में रज एवं वीर्य के सयोग होने पर एसिड एवं आलक्लाइन का रासायनिक मिश्रण होने के कारण जो रासायनिक प्रति-क्रिया होती है, उससे उन जीवों का संहार हो जाता है। वे आगे बोले कि जब से मैंने मेरी आँखों से वीर्य में बिलबिलाते हुये जीवों को देखा तब से अन्तरंग में मुझे बहुत ग्लानि हुई और मैं ब्रह्मचर्य का अधिक से अधिक पालन करने लगा।'

यह आपने एक डॉक्टर के द्वारा कहा हुआ स्वयं का अनुभव पढ़ा। इस विषय को विशेष लिखने का कारण यह है कि अज्ञानता के कारण मनुष्य समाज को जो शारीरिक-

मानसिक क्षति पहुंच रही है, इससे मनुष्य समाज की रक्षा हो। स्वयं की अज्ञानता का बोध हो। यदि कोई एक भी मनुष्य आंशिक रूप से भी ब्रह्मचर्य को आचरण में लाये तो मेरा लिखना सार्थक होगा।

मैंने पहले ही सर्वज्ञ प्रणित शास्त्र से जाना था कि वीर्य में सूक्ष्म जीव होते हैं। जब डॉ० साहब ने बताया तब मैंने सोचा कि मैं भी परीक्षा करके देख लूँ कि जीव कैसे होते हैं और कितने रहते हैं, उसके २–३ दिन के बाद ही सूक्ष्मदर्शक यन्त्र लाकर मेरे को दिखाया, यन्त्र को पहिले ५० गुणा करके देखें; तब हमने सूक्ष्म जीवों की राशि देखा जो किल–बिल कर रहे थे। उनका आकार उस समय सूक्ष्म पुष्पपराग (रेणु) के समान दिखाई दिया पुन: ५०० गुणा करके देखें। उस समय उनका आकार अत्यन्त छोटे मेंढ़क के पूंछ सहित प्युपा आकार का था। मैं बाल्य विद्यार्थी अवस्था से ही विद्या प्रेमी, सत्य उपासक, परीक्षा प्रधानी रहा इसलिये बहुत समय तक विभिन्न प्रणाली से देखा एवं परीक्षण किया। मैं परीक्षण करते–करते बोला जिस समय भौतिक–विज्ञान का नामसुधा नहीं थी, उस समय, उससे भी करोड़ों अरबों वर्ष पहिले आदिनाथ महावीर आदि आध्यात्मिक महावैज्ञानिकों ने यह बात बिना इन्द्रियों से और बिना यन्त्र से आध्यात्मिक ज्योति से देखकर

दुनियां के सामने रखे थे। इसको पहिले कोई नहीं मानते थे, जैन शास्त्र जैसे गोम्मटसार–जीव काण्ड, धवला सिद्धान्त शास्त्र, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, मोक्ष शास्त्र की टीका, श्रावकाचारादि में इसका स्पष्ट वर्णन है।

कुछ शास्त्रों में लिखे हुए विषय को वैज्ञानिक दृष्टि से देखिये—

योनिस्तन प्रदेशेषु हृदि कक्षान्तरेष्वपि ।
अतिसूक्ष्माः मनुष्याश्च जायन्ते योषिताम् ॥

(प्रश्नोत्तर श्रावकाचार)

अति सूक्ष्म मनुष्य जातीय जीव स्त्रियों के योनि, स्तन, हृदय, काँखादि स्थानों में होते हैं।

मेहुण सण्णारूढो मारई णवलकरण सुहुम जीवांई ।
इय जिणवरेंहि भणियं बज्झंतर णिग्गंथ रूवेंहि ॥

(भाव संग्रह)

मैथुन संज्ञा से (काम चेतना से) उत्तेजित होकर जब मनुष्य भोग करता है, तब वह नौ लाख (९०००००) जीवों को मारता है, ऐसा अन्तरंग बहिरंग बन्धनों से रहित ऐसे जिनेन्द्र देव ने कहा है। (कोई–कोई बताते हैं ९ लक्ष कोटि जीव मरते हैं) (९०००००,००००००० जीव)

नवलक्षां गिनोऽत्रैव म्रियन्ते मैथुनेन भो ।
इत्येवं जिन नाथेन प्रोक्तं केवल लोचनात् ।।
(प्रश्नोत्तर श्रा.)

जिननाथ, चिज्जोतिमय केवल आध्यात्मिक रूप अन्तः-चक्षु से देखकर बताये हैं कि मैथुन से ९ लाख जीव मरते हैं ।

णर ससुम्मुच्छिम जीवा लद्धिअपज्जत्तगा चेव ।
(गोम्मट सार)

मनुष्य जातीय सूक्ष्म जीव लब्धि अपर्याप्तक नियम से होते हैं । अर्थात् शरीरादि पर्याप्ति पूर्ण होने के पहिले मर जाते हैं ।

हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत् ।
बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत् ।।
(पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय)

जैसे तिल से पूर्ण नाली में गरम लौह छड़ डालने से तिल भूनकर जल जाते है, इस प्रकार संभोग क्रिया में अनेक जीव जलकर मर जाते हैं ।

अभी विज्ञान के प्रत्यक्ष प्रमाण रूपी अग्नि से महावीर की वाणी जलकर निखर उठी । इस प्रकार सत्य विज्ञान रूपी अग्नि जितनी जलेगी उतनी ही महावीर की वाणी अधिक से अधिक निखरेगी । असत्य रूपी कोयला जलकर

भस्म हो जायेगा, परन्तु सत्यरूपी सोना तपकर शुद्ध बनता है, और भी चमकता है।

मैंने विचार किया इतने सूक्ष्म विषय को भी सन्मति वर्धमान महावीर ने परीक्षण करके और मैथुन से होने वाले जीव विध्वंस को जानकर विश्व को अमर सन्देश दिया—'तिलोय पुज्ज हवइ बंभ' तिन लोक में पूज्य ब्रह्मचर्य है। वीर ने डंका के चोट बोला, अन्य हिंसादि पाप, बिना भाव से हो सकते है, किन्तु अब्रह्म पाप बिना भाव से नहीं हो सकता है।

मैं स्वयं परीक्षा प्रधानी होने से इस परीक्षण से मेरी श्रद्धा धर्म में और भी अधिक दृढ हो गई।

इसको मैं विज्ञान का एक वरदान मानता हूँ। विज्ञान के प्रकाश में वर्तमान, अज्ञान, अन्धकार, रुढ़िवाद, भेडिया चाल आदि रूप तमस् नष्ट हो रहा है। मनुष्य अभी विवेक से परीक्षण करके, तर्क से घिसकर के असत्य को त्यागकर सत्य को ग्रहण कर रहा है। धर्मान्धता, कट्टरता, हठग्राहीता, धर्म में आडम्बरता, तोतारटन, बलीदान, सती-दाह प्रथा, धर्म के नाम पर अन्याय–अत्याचार–दुराचार–शोषण-ठगबाजी आदि-आदि का जो लोप हो रहा है, उसका श्रेय कुछ अंश से आधुनिक विज्ञान, शिक्षा, सभ्यता को है।

इसे मैं ही क्या समस्त प्रबुद्ध मानव स्वीकार करने में इन्कार नहीं करेगा। इस दिक् में मैं सभ्य मानव को हृदय से आह्वान करता हूँ।

हमको सत्य का साक्षात्कार करने के लिये असत्य को त्याग कर आगे बढ़ना है। परन्तु एक ख्याल जरूर रखना है। धर्म से या पुरानी से नफरत कर उसमें स्थित सत्य के अंश को त्याग नहीं करना। नहीं तो "चौबे छब्बे होने के लिये गये, हो गये दुब्बे।" कहा है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणी निसेवन्ते ।
ध्रुवाणी तस्य नस्यन्ति अध्रुवाणि नष्टनेव च ।।

(कौटिल्य)

जो ध्रुव (सत्य) को छोड़कर असत्य का सेवन करता है उसका सत्य नष्ट हो जाता है, असत्य तो नष्ट है ही।

(५) शिकार व्यसन—

निर्दोषो जीवानां, हिंसानन्देन या घातनम् ।
ते शिकारं गर्हित कार्यं, पापस्य कारणम् ।।

हिंसा में आनंद मानकर निर्दोषी जीवों को मारना शिकार है, यह कार्य अत्यन्त गर्हित है एवं पाप के लिये कारण है।

शौक के लिये हिंसा में आनंद मानकर निर्दोष निरप-

राधी पशुओं को निर्दय होकर क्रूर भाव से मारना शिकार व्यसन है। जैसे अपना प्रिय प्राण अपने को प्रिय है ,उसी प्रकार प्रत्येक जीव को अपने-अपने प्राण प्रिय हैं। स्वयं को क्षति पहुँचने पर दुःख होता है, उसी प्रकार दूसरों को क्षति पहुँचाने पर दुःख होता है। अपने प्रिय जन को कोई कष्ट देने पर हमको कष्ट होता है, उसी प्रकार एक पशु को कष्ट देने पर उसके परिवार को एवं प्रिय जनों को भी कष्ट होता है। इस प्रकार विचार करके विवेकी मनुष्य को चाहिये कि कोई भी प्राणी का शिकार न करे।

हिन्दू धर्म में वर्णन है—मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी एक मृग के शिकार के लिये सीता को खो बैठे, जिससे उन्हें अनेक कष्टों को उठाना पड़ा एवं राक्षस वंश का तथा लंका का विध्वंस हुआ। शिकार के कारण दशरथ ने युवक अवस्था में अन्जान अर्थात् अज्ञानता से शब्द भेदी बाण से श्रमण कुमार को मार डाला जिससे उसके माता-पिता ने उसे अभिशाप दिया उसके कारण ही रामचन्द्रजी का वियोग हुआ और वियोग की वेदना के कारण दशरथ का दयनीय मरण हुआ।

केवल शिकार करना ही शिकार नहीं है, किंतु शौक के

लिये पशुओं को जैसे—मुर्गा-मुर्गा, बकरा-बकरा, सांड-सांड, सांड और पहलवान आदि को लड़वाना भी शिकार में गर्भित है क्योंकि इसमें भी निष्प्रयोजन जीवों का घात होता है।

(६) चौर्य व्यसन—

पर द्रव्यस्य हरणं, चौर्यं व्यसनस्य स्वरुपं।
अङ्गच्छेदादि नाना दण्डं, व्यसनस्य परिणामम्॥

मालिक के अनुमति बिना पर द्रव्यों का अपहरण करना चौरी व्यसन है, इससे अंगच्छेद आदि दण्ड मिलते हैं, अर्थ दण्ड मिलता है, जैल में भी जाना पड़ता है।

(७) परनारी गमन—

परनारी गमनं यः, ते परं नरकं ज्ञेयम्।
परनारी इच्छा मात्रेण, हत च दुष्ट रावणः॥

परनारी गमन करना मानो परम नरक है। केवल परनारी की ईच्छा मात्र से दुष्ट रावण को प्राप्त हुआ।

पर स्त्री माता-बहन सुता के समान है। परस्त्री के साथ गमन करना मानों मातादि के साथ रमण करना है। उससे महान पाप होता है, लोक निंदा होती है, यह जीवन नारकी के समान हो जाता है तथा पर जन्म में नरक गति

की प्राप्ति होती है। पर स्त्री रमण करना तो दूर की बात है, किंतु पर स्त्री की इच्छा मात्र से महान् शक्ति शाली विद्याधर शलाका पुरुष रावण का तथा उसकी जाति का तथा लंका सहित स्वयँ नष्ट हुआ एवं नरक में जाकर अत्यन्त दुःख उठा रहा है।

केवल परस्त्री रमण करना मात्र व्यसन नहीं है किंतु परस्त्री को असक्ति पूर्वक देखना, स्पर्श करना, गुप्त बातें करना, गुह्य अंगों का निरीक्षण करना, अश्लील सिनेमा टी वी., फोटो आदि देखना भी पापमय है।

श्रावक के अष्ट मूलगुणों का वर्णन–

मद्य मांस मधु निशासन, पंचफली विरति पंचकाप्तनुती।
जीवदया जल गालन मिति च क्वचिदष्ट मूल गुणाः।।

(१) मद्य, (२) मांस, (३) मधु इन तीन प्रकार का त्याग, (४) रात्रि भोजन का त्याग, (५) पांच उदुम्बर फलों (१. बड़, २. पीपल, ३. गूलर, ४. अंजीर ५. कठुमर) का त्याग, (६) नित्य त्रिकाल देव प्रार्थना करना, (७) दया करने योग्य प्राणियों पर दया करना और (८) जल छानकर पीना अर्थात् काम में लाना इस प्रकार ८ मूल गुण कहे हैं।

पहले (१) मद्य (२) मांस का वर्णन हो चुका है वहां देखने के लिये कष्ट करें।

(३) **मधु त्याग—**

मधु मक्खियां घूम-घूम कर पुष्पों से मधु को मुख में भरकर लाती हैं, और अपने छत्ते में उस मधु को (उल्टी) करके संग्रह करती हैं। मधु (शहद) को प्राप्त करने के लिये छत्ते के नीचे धुआँ करके मधु मक्खियों को मारकर उस छत्ते को बाद में निचोड़कर मधु निकाला जाता है जिससे अनेक मधु मक्खियों के अण्डे फूटकर उनका रस भी मधु के साथ आ जाता है। प्रथमतः मधु क्षुद्र मक्खियों की वांति (उल्टी) है। कोई भी स्वयं की वांति (उल्टी) होने पर उसे घृणा के कारण नहीं खाते हैं, फिर विचार करना चाहिये कि मक्खियों की वांति घृणास्पद कैसे नहीं होगी? अर्थात् अवश्य होगी।

उस मधु में उस वर्ण के असंख्यात सूक्ष्म जीव रहते हैं जिससे मधु सेवन से उन जीवों का घात हो जाता है। मधु (शहद) मधुमक्खियों का संगृहित भोजन है। मधु निकालना अर्थात् उनके आहार को छीन लेना है। मधु निकालते समय अनेक मधुमक्खियों एवं अनेक अण्डों का संहार हो जाता है, जिससे महान हिंसा होती है। उस मधु में उन

मधुमक्खियों की टट्टी, पेशाब मिले रहते हैं, । कदाचित् मधु मक्खी पालन से बिना मधुमक्खियों को मार कर मधु प्राप्त करने पर भी उस मधु में उस वर्ण के असंख्यात जीव रहते हैं । उस मधु सेवन से उन जीवों का संहार हो जाता है । दूसरा पक्ष वह मधु मक्खियों की वांति टट्टी-पेशाब है ।

सप्त ग्रामेषु यत्पाप मग्निना भस्मसात्कृते ।
तन्पापं जायते जंतो र्मधु बिंद्व क भक्षणात् ।।
(मनुस्मृति)

सात ग्रामों को अग्नि से जलाने से जो पाप होता है वह पाप बिंदु मधु खाने से होता है, इसलिये विवेकी पुरुषों को मधु का त्याग करना चाहिये । यदि औषधि के लिये मधु का प्रयोग करना पड़ा तो उसके बदले में गूड, चासनी, मनुक्का आदि मधुर रस का प्रयोग करना चाहिये, परन्तु मधु सर्वथा त्यजनीय है । डॉक्टर लोग जो उसके सेवन के लिये सलाह देते हैं, सर्वथा अनुचित है ।

(४) रात्रि भोजन त्याग—

रवी रस्मो अभावेन रात्रौ संचरन्ति क्षुद्र जीवाः ।
पतन्ति आहार मध्ये तेन रात्रौ भोजनं वर्ज्यम् ।।
रस्मी अभावेन पचति न भोजन तेन बहु रोगम् ।
सर्वत्र हानि कारकः मांस भोजं समं त्याज्यम् ।।

रात को सूर्य की रश्मी के अभाव से क्षुद्र पतंगा आदि जीव गुप्त स्थान से निकल कर विचरणे लगते हैं वे सब आहारादि वस्तुओं में गिर भी जाते हैं उस आहार का भोजन करने से उन जीवों का भी भोजन हो जाता है, जिस से हिंसा का दोष एवं मांस भक्षण का दोष लगता है, उन विषाक्त जीवों से अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। आहार में जूँ खाने से जलोधर रोग हो जाता है, मकड़ी खाने से कुष्ठ रोग हो जाता है, मक्खी खा जाने से वमन होता है, केश खाने से स्वर भंग हो जाता है, चिटी खाने से पित्त निकल आता है, विषभरी छिपकली के विष से आदमी को अनेक रोग होते हैं एवं मरण को भी प्राप्त हो जाता है। रात को सूर्य रश्मी के अभाव से पाचन शक्ति मंद हो जाती है। जिससे खाया हुआ भोजन ठीक से पचन नहीं होता है। उससे बद हजमी, गोस्टिज, पेट दर्द, सिर दर्द आदि रोग हो जाते है। इस प्रकार रात्रि भोजन सर्वत्र मांस भक्षण के सदृश्य हानि कारक होने से त्यजनीय है।

सूर्य किरण में अनेक गुण हैं। विटामिन डी भी है। सूर्य किरण से विषाक्त कीट पतंग-संचार नहीं करते हैं। वायु वातावरण शुद्ध हो जाता है, पाचन शक्ति बढ़ती है।

दिन को वनस्पति अंगार विश्लेषण के कारण प्राण वायु (ऑक्सीजन) छोड़ते हैं जिससे दिन को पर्याप्त प्राण वायु मिलती है। दिन में जितना प्रकाश रहता है उतना प्रकाश और स्वास्थ कर प्रकाश कृत्रिम कोई भी प्रकाश नहीं हो सकता है। और रात को कृत्रिम प्रकाश से कीट-पतंग अधिक संख्या से आकर्षित होकर प्रकाश के स्थान में आते हैं यह सब आप सब को अवगत है ही। इसी प्रकार अनेक कारणों से रात को भोजन करना धर्मतः एवं स्वास्थ की दृष्टि से भी हानि कारक है।

दिवसस्य मुखेचान्ने, मुक्त्वा द्वे द्वे सुधार्मिकः ।
घटिके भोजनं कार्यं, श्रावकाचार चंचुभिः ॥

धर्मात्मा श्रावकों को सवेरे और शाम को आरम्भ और अन्त की दो-दो घड़ी (२४ मिनट) छोड़कर भोजन करना चाहिये।

वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक एवं डॉक्टर लोग सिद्ध किये है कि रात्रि में सूर्य किरण का अभाव से एवं सोने से खाया हुआ भोजन ठीक से पचन नहीं होता है इसलिये अनेक रोग होते हैं। इसलिये रात्रि के ३-४ घंटे पहले अल्पाहार करना चाहिये जिससे आहार शयन के पहले पच जायेगा।

चत्वार नरक द्वाराणि प्रथमं रात्री भोजनम् ।
पर स्त्री गमनं चैव, संघानानंत कायिके ।।

[हिन्दू धर्म]

नरक के ४ द्वार हैं । (१) रात्री में भोजन करना (२) पर स्त्री गमन करना (३) आचार खाना (४) जमीकन्द खाना ।

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिर मुच्यते ।
अन्नं मांसं समं प्रोक्तं मार्कण्डेण महर्षिणा ।।

[हिन्दू धर्म]

सूर्य अस्त होने के बाद जल को रुधिर कहते हैं । और अन्न को मांस के समान कहते हैं यह मार्कण्डेन महाऋषि ने कहा है ।

मृत स्वजन मात्रेऽपि सूतकं जायते किल ।
अस्त गते दिवानाथे, भोजनं किमु क्रियते ।।

[हिन्दू धर्म]

केवल स्वजन मरने से सूतक होता है, परन्तु जो जगत बन्धु सूर्य है उनके अस्त पर भोजन क्यों करते हो ।

ये रात्रौ सर्वथाहारं, वर्जयन्ति सुमेधसः ।
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ।।

जो रात को सर्वथा आहार-त्याग करता हैं, उस ज्ञानी

के एक महीने में १५ दिनों का उपवास का फल मिलता है।

रात्री भोजन के साथ-साथ रात को बनाया हुआ आहार भी नहीं खाना चाहिये क्योंकि रात्री में बनाते समय अनेक सूक्ष्म जीव आहार में गिरकर आहार में मिल जाते हैं। इसी प्रकार रात्रि भोजन से हिसा होती है, अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, और वह जीव मरने के पश्चात् रात्रिचर जीव में जन्म लेता है अर्थात् उल्लू, सिंह, व्याघ्र, बिल्ली आदि योनियों में उत्पन्न होते हैं।

(५) पंचफल विरति–

पांच उदुम्बर फलों का त्याग करना चाहिये [१] बड़ [२] पीपल [३] गूलर [४] अंजीर [५] कठूमर।

उपरोक्त पांचों फलों में साक्षात् त्रस जोव चलते हुए दिखायी देते हैं। उन फलों के भक्षण से विषाक्त त्रस जीवों का भक्षण हो जाता है, हिंसा होती है एवं विभिन्न रोग शरीर में उत्पन्न होते हैं। इसलिये धर्मतः एवं स्वास्थ की दृष्टि कोण से भी पंच उदुम्बरों का भक्षण करना हानि कारक होने से वर्जनीय है।

(६) पंचगुरु शक्ति–

जो आध्यात्मिक गुणों से आलंकृत रहते है, जो गुणों से गुरु (भारी) रहते हैं जो मनुष्य समाज के लिये आदर्श स्वरूप, अनुकरणीय समाज राष्ट्र के मार्ग दर्शक होते हैं

और जिनके लिये स्व–पर का भेद-भाव नहीं रहता है। "वसुन्धेव स्व कुटुम्बकम्" अर्थात् जिनका कुटुम्ब पूर्ण विश्व हैं उन को गुरू कहते हैं, वे पांच प्रकार के हैं :—

[१] शरीर धारी जीवन्मुक्त निर्मल बीतराग परमात्मा अरिहंत [२] शरीर रहित निरंजन शुद्ध बुद्ध परमात्मा "सिद्ध" [३] जो स्वयं धर्म के मार्ग पर सतत-विचरण करते हैं, एवं अन्य धर्म प्रेमी शिष्य वर्गों को धर्म के रास्ते में चलने के लिए प्रशिक्षण देते हैं ऐसे 'आचार्य परमेष्ठी' [४] जो स्वयं सत्य के साक्षात्कार के लिये ज्ञान विज्ञान का अध्ययन करते हैं ऐसे ज्ञान धनी "उपाध्याय संत" [५] जो आत्मा विशुद्धि के लिये एवं शाश्वतिक शांति के लिये आत्म साधन में तत्पर रहते हैं। अन्तरंग-बहिरंग ग्रन्थ से रहित "निर्गन्थ साधुओं" को मिलाकर पंच गुरु होते है। उनके गुणानुराग से उनकी सेवा स्तुति वंदना अर्चना, पूजा, संरक्षण, वैय्यावृत्ति आदि करना पंच गुरु भक्ति है।

(७) जीव दया—

"धर्मस्य मूलं दया" अर्थात् धर्म का मूल दया होने से धर्मात्मा के लिये जीव दया करना सर्वोपरि है।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट में प्राण ।
(तुलसीदास)

दण्ड से लोग डरते हैं । जीवन सबको प्यारा लगता है, दूसरों को अपने जैसा ही मानकर मनुष्य न किसी को मारने की प्रेरणा करें ।

सव्वे वसन्ति दण्डस्य सव्वे भायन्ति प्रच्चुनो ।
उतानं उपमं कत्वा न हन्नेय्य घातये ।।
(बौद्ध धर्म धम्मपद)

दण्ड से सभी लोग डरते हैं । मृत्यु से भी भय खाते है । दूसरों को अपने जैसा मानकर मनुष्य न तो किसी को मारे और न किसी को मारने ती प्रेरणा करें ।

प्राणी घात्तात्त यो धर्मं महिते मूढ़ मानसः ।
स वाञ्छति सुधावृष्टिं कृष्णाऽहि मुख कोटरान् ।
(व्यास वाक्य)

प्राणी घातसे जो मूढ़ यति धर्म को चाहता है, वह मानो अत्यंत भयंकर विषधर कृष्ण सर्प के मुखसे अमृत वृष्टि को चाहता है अर्थात् कृष्ण सर्प के मुख से अमृत वृष्टि नहीं हो सकती है । उसी प्रकार घात से धर्म नहीं हो सकता है ।

इसलिये अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं—

"अमृतत्व हेतु भूतं परममहिंसारसायनं लब्ध्वा"

(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

अमृत तत्व के हेतुभूत अहिंसा परम रसायन है अर्थात् अहिंसा रूपी अमृत पान से जीव को शाश्वतिक अजरा अमर अनंत सुख सम्पन्न मोक्ष मिलता है।

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागा"

(पतञ्जलियोग द.)

अहिंसा में स्थिर होने पर उस अहिंसक महात्मा के संपर्क-सहवास दर्शन स्पर्शन से सब प्राणियों का द्वेष भाव नष्ट हो जाता है।

अतः अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा जगदम्बा है, अहिंसा ही परम नीति है, अहिंसा ही परमदान है, अधिक क्या अहिंसा ही अमृत है, अहिंसा ही परमात्मा स्वरूप है। इससे ही विश्वशांति, विश्वमैत्रि, सह अस्तित्व, युद्ध निशस्त्रीकरण हो सकता है। अधिक क्या विश्व में युद्ध का नाम-निशान भी नहीं रह सकता है। अहिंसा के पूर्ण प्रसार से पुलिस, न्यायालय, मिलिट्री आदि की आवश्यकता ही नहीं होगी। प्रत्येक स्थान में धर्म राज्य रामराज्य ही हो जायगा। इसलिये अहिंसा रूपी अमृत को सबको सेवन करना परम कर्त्तव्य है।

जल छानकर पीना :--

असंख्य त्रस जीवं अगातिल जले निवसन्ति नित्यम् ।
तेन तत्पानेन हिंसा च भवति बहु रोगम् ।।

अगतिल (बिना छना पानी) पानी में असंख्यात त्रस जीव सतत वास करते हैं। इसलिये बिना छना पानी पीने से हिंसा होती है एवं अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

दृष्टि पूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यं पूतं वदेत्वाचं मनः पूतं समाचेरत् ।।

(मनु स्मृति)

देख कर जीवों की रक्षा करते हुये चलना चाहिये। वस्त्र से पानी को छानकर पीना चाहिये। मन को पवित्र बनाकर आचरण करना चाहिए।

आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों ने सिद्ध किया है कि एक जल बिन्दु में ३६४५० रोगाणु रहते हैं। जैन विज्ञान आध्यामिक वैज्ञानिकों ने आध्यात्मिक दिव्य ज्ञान से प्राय ऐतिहासिक काल से जल में त्रस जीवों का सद्भाव है यह स्पष्ट एवं प्रमाणिक रूप से प्रतिपादित किया है। वैज्ञानिक यंत्र से समिति शक्ति होने के कारण एक निश्चित आकार के जीव दिखाई देते हैं। किन्तु उससे

सूक्ष्म जीव उस सूक्ष्म दर्शी यंत्र में दिखाई नहीं देते हैं। इसलिये वैज्ञानिकों ने एक बिन्दु में ३६४५० जीवों को अभी तक पाये हैं। परन्तु सर्व दर्शी सर्वज्ञ वीतराग-विज्ञान के ज्ञाता मनीषियों ने एक जल बिन्दु में जो जीव स्पष्ट अवलोकन किये हैं। उनकी संख्या वर्तमान संख्या की अपेक्षा कई अरबों खरबों गुणी है। यह संख्या स्थावर जीवों मे नहीं हैं, यह त्रस जीवों की है। इसीलिये अहिंसा की दृष्टि से एवं आरोग्य दृष्टि से पानी छानकर भोजन में प्रयोग करना अत्यंत अनिवार्य एवं विधेय भी है।

पानी छानने की विधि :—

पानी छानने के लिये सफेद नवीन मोटा कपड़े को प्रयोग में लाना चाहिये। कपड़ा यदि रंगीन होगा तो, उस कलर केमिकल (रंगीन रसायन) से जीवो को बाधा पहुंचेगी एवं घात भी होगा। इसलिये कपड़ा सफेद होना चाहिये। पहने हुए कपड़े या प्रयोग में लायें हुये कपड़े गन्दे होने से जीवों को बाधा पहुंचेगी एवं जल दूषित हो जाएगा। कपड़ा पतला होने से जीव छनकर कपड़े के ऊपर नहीं रहेंगे। जिस बर्तन में पानी छानना है, उस बर्तन से कपड़ा तीन-चार गुना होना चाहिए। जिससे कपड़े को दोहरा करके छानने में सुविधा होगी। कपड़ा इतना मोटा

होना चाहिये, जिसको दोहराने के बाद सूर्य की किरण उससे पार नहीं हो सके। जिस बर्तन में पानी जलाशय से निकालना है, एवं जिसमें पानी छानना है, इस प्रकार दोनों बर्तन स्वच्छ होना चाहिए। जिस साधन से पानी निकलना है, वह साधन रस्सी आदि भी स्वच्छ होना चाहिए। कुओं से पानी निकालने की बाल्टी आदि के नीचे भी रस्सी होना चाहिये। जिससे छने हुए जीवों को सुरक्षित रूप से पानी में पहुंचाया जा सके।

जलाशय से पानी निकालने के पश्चात् दूसरे स्वच्छ बर्तन के ऊपर उपरोक्त कपड़े (छना, नातना) को डालकर पानी सावधानी से छानना चाहिए, जिससे छना हुवा पानी नीचे न गिरे जीवों का घात न हो जल का अपव्यय नहीं होवे पानी छान ने के बाद तत्क्षण ही छने हुवे जीव सहित कपड़े को सावधानी से लेकर जिससे जीव नीचे न गिरे, दूसरे पात्र के ऊपर रखकर छने हुए पानी को उस कपड़े के ऊपर डालना चाहिए, छने हुवे जीव उस पात्र में बाधा रहित पहुंच जायेंगे। उन जीवों को सावधानी पूर्वक पानी के पास पहुंचकर नीचे की रस्सी ऊपर खींच देना चाहिये, जिससे पात्र उलटा होकर पानी सहित जीव पानी में प्रवेश कर जायेंगे। छने हुवे जीवों को कपड़े के ऊपर ज्यादा समय

नहीं रखना चाहिये—क्योंकि ज्यादा समय रहने पर उपयुक्त जल एवं वातावरण के अभाव में जीव मरण को प्राप्त हो जायेंगे। ऊपर से भी जीवों को नहीं डालना चाहिये। क्योंकि ऊपर से गिरने से प्रतिघात के कारण जीव मर जायेंगे। छने हुवे जीवों को ऊपर स्थल भाग में नहीं फेंकना चाहिए क्योंकि वे वहां पर जीवित नहीं रह सकते। जिस जलाशय से पानी निकाले उसी जलाशय में उन जीवों को डालना चाहिये क्योंकि अन्य जलाशय का पानी का गुण रासायनिक धर्म अलग होने के कारण उन जीवों को कष्ट पहुचेगा एवं घात भी हो सकता है।

वर्तमान जलनालियों का प्रयोग ज्यादा हो रहा है, उससे ही जल लाते हैं. पानी छानने के लिये अधिकतर लोग नल में कपड़ा बांध देते है, और कपड़ा जब तक गलकर नष्ट नहीं होता है, तब तक बंधा रहता है, यहां तक की नीचे कपड़ा गलकर फट जाने पर भी दूसरा नया कपड़ा प्रयोग में नहीं लाते हैं। नल से पानी छानने के पश्चात् नल में बंधे कपड़े को सावधानी से खोलकर छने हुए पानी से धोकर उस कपड़े को सुखा देना चाहिये। उन जीवों को जिस नाली में स्वच्छ पानी बह रहा है, वहां छोड़ देना चाहिये। वस्तुतः उनकी संपूर्ण सुरक्षा के लिये जहाँ से पानी नल में आ रहा है वहाँ ही छोडना चाहिये।

परन्तु यह असंभव नहीं होने पर भी प्रायः कष्ट साध्य होने से स्वच्छ बहती नाली में अपवाद मार्ग से छोड़ रहे हैं। वहाँ पर भी उनकी सुरक्षा होना प्रायः असंभव है, क्योंकि नाली में दूषित पानी रहता है। जिससे उन जवों का घात होना प्रायः संभव है। इसलिये दयालु धर्मात्माओं को इस प्रकार के जलाशयों से पानी लाना चाहिये, जहां पर जीव सुरक्षित रूप से पहुँच सकते हैं।

छने पानी की मर्यादा

उपरोक्त विधि से पानी को छानने के बाद पानी की मर्यादा अर्थात् अवधि अन्तर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनिट के अंदर-अंदर है। इसी प्रकार त्रस जीव से रहित शुद्ध पानी का प्रयोग स्नान करने लिये, कपड़ा धोने के लिये, पीने के लिये, भोजन तैयार करने के लिए, बर्तन-मांजने-धोने के लिये आदि समस्त कार्य में प्रयोग करना चाहिये। वर्तमान में कुछ लोग पीने के लिये एन-केन-प्रकारेण सुबह छना हुआ पानी दिनभर अर्थात् शाम तक प्रयोग करते हैं। परंतु स्नानादि कार्यों के लिये अनछना पानी का ही प्रयोग करते हैं। स्नानादि में पानी का जो उपयोग होता है, उसमें क्या जीवों का घात नहीं होता है? अवश्य होता है।

एक बार छानने के बाद गृहस्थ लोग ४८ मिनिट

के पहले-पहले तक उसको प्रयोग करते हैं, उसके पश्चात् प्रयोग करना है तो पुनः उपरोक्त रीति से ही छानकर पानी का उपयोग करना चाहिये। पानी की मर्यादा इससे अधिक चाहिए तो उसमें इलायची, लोंग पीसकर इतनी डालनी चाहिए जिससे पानी का स्पर्श, रस, गंध, वर्ण बदल जाना चाहिए इस प्रकार की विधि से प्रासुक किये पानी की मर्यादा ६ घड़ी है तथा थोड़ा गर्म करने पर भी पानी की मर्यादा ६ घड़ी होती है। और इससे भी अधिक मर्यादा के लिये पानी को खूब उबाल लेना चाहिए उस प्रकार पानी की मर्यादा २४ घण्टे हो जाती है। २४ घण्टे के बाद उस पानी को उबालकर या छानकर या उसी प्रकार प्रयोग नहीं करना चाहिए। दूध, दही, घी, मक्खन की मर्यादा—

प्रासुक पानी से थनों को धोकर, हाथ को पानी से धोकर स्वच्छ बर्तन में दूध निकालना चाहिए, उस दूध को अन्तर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनिट के अन्दर-अन्दर छानकर गर्म करना चाहिए। ठीक से अर्थात् उबाल आने पर उस दूध की मर्यादा २४ घण्टे हो जाती है। २४ घण्टे के पश्चात् या बिना गर्म किया दूध में तज्जाति अर्थात् गाय के दूध में गाय जातिय असंख्यात वेकट्रिया जीव उत्पन्न होते हैं इस लिए अशुद्ध दूध सेवन से हिसा होती है एवं रोग का कारण बनता है।

उस शुद्ध दूध में शुद्ध चांदी, मारबल पत्थर, नारियल की नरेठी डालकर दही जमाना चाहिए। पहले का दही, मठा डालकर तैयार किया हुआ दही अमर्यादित है, कच्चे दूध में दही डालकर तैयार कर वह भी अमर्यादित है, दूध से दही बनाने से अशुद्ध पात्र या जामन होने से उस दही में अनेक वेकट्रिया उत्पन्न होते हैं उस प्रकार का दही खाने योग्य नहीं है। परन्तु उपरोक्त शुद्ध दही में जीव नहीं होने से २४ घण्टे के पहले-पहले भोजन में प्रयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार दही मथने से शुद्ध मठा (मही) बनता है एवं शुद्ध मक्खन निकलता है वह मक्खन को अन्तर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनिट के पहले घी बना लेना चाहिए, नहीं तो उस वर्ण के असंख्य जीव उत्पन्न हो जाते हैं। उससे जो घी बनता है वह भी अशुद्ध होता है। अन्तर्मुहूर्त के पहले मक्खन में जीव नहीं होने पर भी मक्खन कामोद्दीपक इन्द्रिय उत्तेजक अशुभ होने से खाने के लिए योग्य नहीं है। इसी प्रकार यह अष्ट मूल गुण प्रत्येक आदर्श नागरिक के लिए, नैतिक उन्नति के लिए धार्मिक जागृति के लिए अत्यन्त अनुकरणीय है।

श्रावक के दैनिक कर्म

देव-गुरु पास्ति च स्वाध्याय संयम तप दानम् ।
कर्त्तव्य श्रावकाणां उभय लोक हिताय ॥

(१) देव पूजा (२) गुरुओं की सेवा (३) आर्ष-ग्रन्थों का स्वाध्याय (४) प्राणी रक्षा एवं इन्द्रिय मन निग्रह (५) तपश्चरण (६) स्व, पर उपकार के लिये दान देना।

उभय लोक के हित के लिये श्रावकों को दैनिक करने योग्य यह कर्त्तव्य हैं।

(१) देवा पूजा—

पूज्य जिनेन्द्र देवः सर्वज्ञः च वीतरागः ।
पूजने मन प्रशमः तस्मात् स्वर्ग च मोक्षम् ॥

जो आध्यात्मिक महा पुरुष इन्द्रिय और मन अन्तरंग शत्रु क्रोध-मान-माया-लोभादि को जीतते है ऐसे जितेन्द्र देव, सर्वज्ञ एवं वीतराग हैं उनके गुणानुराग से गुण स्मरण करना, प्रार्थना करना, पूजा (अर्चना), वंदना आदि करना देव पूजा है। इससे मन प्रशम भाव को प्राप्त होता है। जिससे मानसिक शांति मिलती है पाप नष्ट होता है, पुण्य की प्राप्ति होती है और परम्परा से स्वर्ग मोक्ष की उपलब्धि होती है।

(२) गुरु सेवा—

धर्मस्य जीवन्त मूर्तिः ग्रन्थारम्भ परि त्यागी ।
गुरोः च वैयावृत्तिः ते गुरु पास्ति रुच्यते ।।
गुरु बिना न धर्मः धर्मं बिना न सुखम् ।
तेन सुखस्य हेतवे गुरु पास्तिय नित्यम् ।।

धर्म की साक्षात् जीवन्त मूर्ति स्वरूप अन्तरंग-बहिरंग ग्रन्थियों से विमुक्त सांसारिक पापात्मक कार्य के जो त्यागी हैं वह गुरु हैं उनकी सेवा, विनय आदि करना गुरुपास्ति है । गुरु के बिना धर्म का यथार्थ प्रतिपादन संरक्षण, संवर्धन नहीं हो सकता है । इसलिये गुरु बिना धर्म भी टिक नहीं सकता हैं । धर्म बिना सुख नहीं है, इसलिये सुख के लिये गुरुओं की सेवा नित्य करना चाहिये ।

गुरु सेवा का फल—

उच्चै र्गोत्रं प्रणते, भोगो दाना दुपासनान्पूजा ।
भक्तेः सुन्दर रुपं स्तवनात्कीर्ति स्तपो निधिषु ।।
(श्रावकाचार समन्तभद्राचार्य)

गुरुओं को प्रणाम करने से उत्तम गोत्र की प्राप्ति होती है, दान देने से उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति होती है, उपासना करने से स्वयं कि पूजा होती है । भक्ति करने से

काम देव सदृश्य लावण्य सुन्दर शरीर की प्राप्ति होती है, स्तवन करने से कीर्ति देशों दिशाओं में फैलती है।

एक कवि ने कहा है—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाय ।
बलिहारी गुरु देव की, गोविन्द दियो बताय ।।
गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरु स्तथा ।
पापं तापं तथा दैन्यं सर्वं सज्जन संगमः ।।

गंगा से ताप नष्ट होता है, चन्द्र किरण से संतप्प नष्ट होता है, कल्पवृक्ष से दरिद्रता नष्ट होती है, परन्तु सज्जन (गुरु) की संगति से पाप, ताप तथा दीनता सर्व एक साथ विलीनता को प्राप्त होती हैं।

गुरु भक्ति सती मुक्त्यै, क्षुद्रं किं वा न साधयेत् ।
त्रिलोकी मूल्य रत्नेन, दुर्लभः किं तुषोत्करः ।।

यदि गुरु भक्ति से मोक्ष रूपी अत्यन्त मूल्यवान वस्तु मिल सकती है, तो क्या अन्य क्षुद्र कार्यों की सिद्धि नहीं हो सकती है ?

जिस अमूल्य रत्न से त्रिलोक मिल सकता है। उस रत्न से क्या सामान्य तुष नहीं मिल सकता है। अर्थात् निश्चय से मिल सकता है। इसलिये हितकांक्षियों को

सतत् प्रयत्नशील होकर गुरुओं की सेवा करनी चाहिये। एक कवि ने कहा भी है—

हरिषु जनषु हेत कर, कर हरिजन सु हेत।
माल मूलक हरि देत हैं, हरि जन हरि हि देत।।

भगवान की सेवा करने से भगवान धन सम्पत्ति दे सकते हैं, परन्तु गुरुओं की सेवा करने से गुरु जन भगवान ही दे देंगे।

प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रांति हुई है, हो रही है और होगी उसका मूल कारण गुरु ही है। गुरु एक क्रांतिकारी, सत्य शोधक, नवीन-नवीन तथ्य के उन्नायक होते हैं, गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है, अलग्भेण्डर (सिकन्दर) महान बना अरस्तु के कारण। चन्द्र गुप्त मौर्य दिग् विजयी बना गुरु कौटिल्य चाणक्य के कारण। शिवाजी छत्रपति शिवाजी बना गुरु समर्थ रामदास के कारण, मोहनदास महात्मा गांधी बने रायचन्द्र जैन के कारण। इसी प्रकार ऐतिहासिक काल के पहले ही राजा महाराजा, सम्राट भी गुरुओं के चरण के सानिध्य में जाकर ज्ञान विज्ञान राजनीति, अर्थ शास्त्र, युद्ध विद्या, कला कौशल, गुरुओं से ग्रहण करते आ रहे हैं।

गुरु बिना सर्वे भवन्ति पशुभिः सन्निभः ।

गुरु के बिना मनुष्य, पशु के सदृश हैं ।

"गुरु बिना कौन दिखावे बाट, अवगड़ डोंगर घाट"

गुरु के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा, यह संसार कंटकाकीर्ण है । अत्यन्त दुःरूह है, भयंकर जंगल-घाट के समान है उसे पार करने के लिये गुरु रूपी मार्ग दर्शक की नितान्त आवश्यकता हैं ।

(३) स्वाध्याय—

आत्म कल्याण हेतवेः सत्यशास्त्रस्य पठनम् ।
स्वाध्याय गुरु सन्निध्ये विवेक ज्योति प्राप्ताय ।।

आत्म कल्याण के लिये विवेक ज्योति प्राप्त करने के लिये सद्गुरु के चरैण सानिध्य में एवं उनके मार्ग दर्शन में सत् साहित्यों का पठन करना स्वाध्याय हैं ।

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्र, यस्य नास्त्यन्ध एवम् ।।

अनेक संशय को छेद करने वाला परोक्ष पदार्थ को दर्शाने वाला एवं सब के चक्षु स्वरूप शास्त्र है जो शास्त्र अध्ययन नहीं करता है । वह आंख वाला होते हुए भी अन्धे के सदृश्य है ।

जिण वयण मोसह् मिणं विसय सुह् विरेयणं अमिदभूयं ।
नर मरण वाहि हरणं खय करणं सव्व दुक्खाणं ।।
(अष्ट पाहुड कुन्दकुन्दाचार्य)

जिनेन्द्र भगवान की अमृत वाणी महान औषधि है। इसके सेवन से काम भोग विषय रूपी विष वांति (उल्टी) हो जाती है। यह अमृत तुल्य है। इस बचनामृत का पान करने से जनम-मरण-व्याधि नष्ट हो जाती है और सम्पूर्ण दुःखों का विलय हो जाता है।

(४) संयम—

आत्म संरक्षणार्थे यन्मनेन्द्रिय रोधनम् ।
ते संयम बिज्ञेयं आत्मोन्नति कारणम् ।।

आत्मा की सुरक्षा के लिये, आत्म उन्नति के लिये दुष्ट इन्द्रिय एवं मन का सम्यक् निरोध करना संयम है।

(५) तप—

ईच्छा निरोधने तपः, तप बाह्य अन्तरम् ।
तपः तपनं समं सर्वं तमं विनाशकम् ।।

आकांक्षा का नियन्त्रण करना तप है, यह तप बाह्य एवं अन्तरंग के भेद से दो प्रकार का है। तप तपन (सूर्य) के समान समस्त अज्ञान, मोह, अविद्या अन्धःकार को नाश करने वाला है।

५. दान—

स्वपर हित सिद्ध्यर्थं दानं देयं चतुष्टयम् ।
दान बिना न दया, दया बिना भवति न धर्मम् ।।

स्वपर हित साधन के लिये चार प्रकार का दान देना चाहिये । दान के बिना दया नहीं हैं, दया के बिना धर्म नहीं है ।

जो दान देता है वह दान देते हुए अंतरंग में एक अलौकिक आनन्द अनुभव करता है, दान से उसकी कीर्ति दश दिशाओं में फैल जाती है पाप कर्म का नाश करता है, सातिशय पुण्य वृद्धि को प्राप्त होता है । उस पुण्य से इस लोक में ख्याति, पूजा, वैभव प्राप्त होता है, परलोक में भोग भूमि स्वर्ग, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती की विभूति मिलती है । दान के चार प्रकार हैं—(१) आहार दान (२) औषधि दान (३) ज्ञान दान (४) वसतिका दान या अभय दान ।

आहार दान—

"शरीर मांद्यम् खलु धर्म साधनम्" धर्म साधन के लिये शरीर सर्वश्रेष्ठ एवं प्रथम साधन है, योग्य शरीर से धर्म साधन विशेष होता है, शरीर रक्षा के लिये आहार चाहिये । आहार के बिना शरीर टिक नहीं सकता है ।

क्षुधा एक भयंकर रोग है, क्षुधारूप रोग से सम्पूर्ण शरीर जलने लगता है, शरीर दुर्बल हो जाता है, इन्द्रिय—मन एवं अवयव शिथिल पड़ जाते हैं, जिसके कारण धर्म साधन विशेष नहीं हो पाता है, इसलिये क्षुधारूप रोग को दूर करने के लिये भोजन रूपी आहार की नितान्त आवश्यकता है। सर्व आरम्भ परिग्रह त्यागी साधु केवल भिक्षा अन्न से ही उदर पोषण करते हैं। जिससे की उनकी धर्म साधना उत्तम रीति से चलती रहे। इसलिये सद्-गृहस्थों का पवित्र श्रेष्ठ कर्तव्य है। ऐसे धर्मात्मा साधु पुरुषों को शुद्ध आहार दान दे उनकी रक्षा करें जिससे धर्म की भी रक्षा होगी। धर्म की रक्षा से विश्व में सुख शान्ति फैलेगी।

दानं दुर्गति नाशाय शीलं सद्गति कारणं ।
तप कर्म विनाशाय भावना भव नाशिनी ।।

दान से दुर्गति नाश होती है, शील से सद्गति मिलती है, तप से कर्म नाश होता है, भावना से संसार नाश होता है।

हस्तस्य भूषणं दानं, सत्यं कंठस्य भूषणम् ।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं भूषणैः किं प्रयोजनम् ।।

हस्तका भूषण सोने का कड़ादि नहीं है परन्तु दूसरों को दान देना ही भूषण है। कंठका भूषण रत्नादि हार

नहीं है परन्तु सत्य बोलना भूषण है। कान का भूषण कुंडलादि नहीं है परन्तु साधुओं का आत्मा उद्धारक उपदेश सुनना भूषण है। इसी प्रकार जो भूषण से अलंकृत है उसको भौतिक भार स्वरूप भूषण से क्या प्रयोजन है ?

गज तुरंग सहस्त्रं गोकुलं भूमि ।
दानं-कनक रजत पात्रं मेदोनी सागरान्तं ।
सुरजुवती समानं कोटि कन्या प्रजनं नही ।
भवति समानं हयन्नदानं प्रधानं ।।

हजारों हाथी, घोड़ा, गाय, भूमि, स्वर्ण पात्र, रजत पात्र, सागर पर्यंत पृथ्वी, अप्सरा के समान सुन्दरी, कोटि कन्या प्रदान करना भी अन्न दान के समान नहीं है, अन्न दान प्रधान दान है क्योंकि भोजन से क्षुधा रोग मिटता है जिससे निराकुल रूप से धर्म साधन होता है जिससे शाश्वतिक सुख मिलता है शान्ति मिलती है।

सत्पात्र दानेन भवेद्धनाढयो धन प्रकर्षेण करोति पूज्यम ।
पुण्याधिकारी दिवि देवराजः पुनर्धनाढयः पुनरेव त्यागी ।।

सत् पात्र दान से पुण्य संचय होता है। पुण्य के प्रभाव से धनी बनता है, धन बढ़ने से पुनः दानादि करके पुण्य कार्य करता है जिससे सातिशय पुण्य होता है जिससे स्वर्ग सुख में देवराज इन्द्र बनता है। स्वर्ग से च्यूत होकर पुनः

वैभवशाली धर्मात्मा मनुष्य बनता है। यहाँ पर पुनः त्याग करता है।

दिण्णई सुपत्तदानं विसेसतो होइ भोग सग्गमही ।
णिव्वाससुहं कमसो णिद्दिट्ठं जिणवरिं देहिं ॥

(रयणसार)

उत्तम साधु पुरुष को दान देने से नियम से भोग एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है अनुक्रम से निर्वाण सुख भी मिलता है। ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवान ने दिव्य संदेश दिया है।

जो मुणि भुत्त वसेसं भुंजइ सो भुंजए जिणवदिट्ठं ।
संसार सार सोक्खं कमसो णिव्वाण वर सोक्खं ॥

(रयणसार)

जो भव्य जीव मुनिश्वरों को आहार दान एवं देने के पश्चात् अवशेष अन्न को प्रसाद समझकर सेवन करता है वह संसार के सार भूत उत्तम सुखों को प्राप्त होता है और क्रम से मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इससे सिद्ध होता है कि अतिथियों को पहले आहार दान देकर उसके पश्चात् ही सद्गृहस्थ भोजन करता है। गांव में साधु नहीं होने पर भी आहार के समय में द्वार-प्रेक्षण करनी चाहिए अर्थात् साधु कहीं से आ रहे हैं या

नहीं । यदि आ रहे हैं तो उनका स्वागत करके भोजन
चाहिये ।

गृह कर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृह विमुक्तना
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिर मलं धावते वा
(रत्नकर

गृह संबंधी आरंभ, कृषि, व्यापार भोजनादि बना
जो पापरूपी कलंक लिप्त होता है उस कलंक को धो
लिये गृह त्यागी अतिथि मुनियों को आदर पूर्वक दान
से वे कर्म धुल जाते हैं । जैसे रक्त से लिप्त कपड़ा पान
धोने से स्वच्छ हो जाता है ।

न वे कदरिया देव लोकं वजन्ति ,
बालाह वे न धसंसन्ति दानम ।
धीरोच दानं अनुमोद मानो ,
तेनेव सो होति सुखी परत्थ ।

(धम्मपद बौ

कंजूस आदमी देव लोक में नहीं जाते, मूर्ख लोग
की प्रशंसा नहीं करते, पंडित लोग दान का अनुमोदन व
हैं । दान से ही मनुष्य लोग परलोक में सुखी होते हैं

औषधि दान —

रोगिन्यो भेषजं देयं रोगो देह विनाशकः ।
देहे नाशे कुतो ज्ञानं ज्ञानाभावे न निवृत्तिः ।।

रोगियों को औषधि देना चाहिये, क्योंकि रोग शरीर का नाशक है। शरीर का नाश होने पर ज्ञान कैसे हो सकता है और ज्ञान के बिना निर्वाण कैसे प्राप्त हो सकता है।

इसलिये जो औषधि दान देता है, शरीर को बचाता है ज्ञान निर्वाण प्राप्ति के लिये सहकारी कारण बनता है।

गुरुओं को धार्मिक जनों को रोगियों को अहिंसात्मक प्रासुक शुद्ध औषधि देना औषधि दान है तथा शुद्ध औषधालय खोलना, रोगिओं की सेवा, चिकित्सा करना उनको सांत्वना देना प्रिय बचन बोलना साहस दिलवाना आदि औषधि दान में आता है।

ज्ञान दान—

यो ज्ञान दानं कुरुते मुनीनां सदेव लोकस्य सुखानि भुक्त्क ।
राज्यं च सत्केवल बोध लब्धि लब्ध्वा स्वयं मुक्तीपदं लभेत् ।।

जो मुनियों के लिये ज्ञान दान करता है वह स्वर्ग लोक से सुख भोगकर राज्य को प्राप्त करता है और केवल ज्ञान को प्राप्त कर स्वयं मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

मुनियों को शास्त्र ज्ञान उपकरण जैसे कागज, कलम आदि देना ज्ञान दान कहा जाता है। तथा सत्साहित्यों का प्रकाशन वितरण करना ज्ञान दान है। स्वयं दूसरों को

पढ़ाना, धार्मिक उपदेश करना, धार्मिक शिविर खोलना, धार्मिक स्कूल खोलना, उसके लिये आर्थिक सहयोग देना ज्ञान दान है ।

अभय दान या वसतिका दान—

प्रत्येक जीव की रक्षा करना, गुरुओं का उपसर्ग परिषह दूर करना योग्य वसतिका (निवास गृह) देना पिंछी-कमण्डलादि उपकरण देना अभय दान और वसतिका दान में गर्भित है ।

जीव की रक्षा करना उनको किसी प्रकार कष्ट नहीं पहुंचाना बहुत बड़ा दान है । क्योंकि उससे जीवन की रक्षा हुई, जीवन रक्षा से वह अन्य धार्मिक कार्य कर सकता है ।

दाणुण दिण्णउ मुणि वरउँ ण वि पुज्जिउ जिणणाहु ।
पंचण वंदिय परम गुरु किमु होसइ सिव लहु ।।

जो मुनिश्वरों को दान नही देता है, जिनेन्द्र भगवान की पूजा नहीं करता है, पंच परमेष्ठियों की वंदना नहीं करता है, उसको शिव सुख साम्राज्य कैसे प्राप्त हो सकता है ?

दान फल—

ज्ञान वान् ज्ञान दानेन निर्भयोऽभयदानतः ।
अन्नदानात्सुखी नित्यं निर्व्याधि भेषजाद्भवेत् ।।

ज्ञान दान से दानी ज्ञानवान बनता है अभयदान देने से दानी निर्भय बनता है, अन्न दान से दानी नित्य सुखी रहता है, औषधि दान से दानी निरोग शरीर को धारण करता है।

साधु की आचार संहिता :—

सुख शांति, स्वातंत्र्य, सुख के इच्छुक गृहस्थाश्रमी और आगे बढ़ना चाहते हैं तो समस्त बंधनों को काटकर विहंग के समान स्वतन्त्र होकर आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने के लिये लालायित हो उठता है। उस आत्म-साधन के लिये साधु चारित्र का अवलंबन लेता है।

सर्वसंग विवर्जित, सर्वपापमल मुक्तः ।
अष्ट विंशति गुण युक्तः साधुस्य साधु चारित्रः।।

अंतरंग बहिरंग समस्त ग्रंथियों से रहित सर्व पापों से विमुक्त २८ मूल गुण सहित साधु का चरित्र होता है।

अन्तरंग परिग्रह—१. मिथ्यात्व १. क्रोध ३. मान ४. माया ५. लोभ ६. हास्य ७. रति ८. अरति ९. शोक १०. भय ११. जुगुप्सा १२. पुरुष वेद १३. स्त्री वेद १४. नपुंसक वेद।

बहिरंग परिग्रह—१. क्षेत्र २. वस्तु ३. हिरण्य ४. सुवर्ण ५. धन ६. धान्य ७. दासी ८. दास ९. कुप्य १०. भाण्ड ।

२८ मूल गुण—१. पांच महाव्रत, २. पांच समिति ३. पांच इन्द्रिय निरोध ४. छह आवश्यक क्रिया ५. सात विशेष गुण ।

(१) **पांच महाव्रत**—१. अहिंसा महाव्रत २. सत्य महाव्रत ३. अचौर्य महाव्रत ४, ब्रह्मचर्य महाव्रत ५. अपरिग्रह महाव्रत ।

(२) **पांच समिति**—१. इर्या समिति २. भाषा समिति ३. ऐषणा समिति ४. आदान निक्षेपण समिति ५ उत्सर्ग समिति ।

(३) **पांच इन्द्रिय निरोध**—१. स्पर्शन इन्द्रिय २. रसना इन्द्रिय ३. घ्राणेन्द्रिय ४. चक्षु इन्द्रिय ५. कर्ण इन्द्रिय । उपरोक्त पांच इन्द्रियों का निरोध इन्द्रिय निरोध है ।

(४) **छह आवश्यक क्रिया**—१. समता २. स्तुति ३. वंदना ४. प्रतिक्रमण ५. प्रत्याख्यान ६. कायोत्सर्ग ।

(५) **सात विशेष गुण**—अचेलक गुण (नग्नत्व) २. स्थिति

भोजन ३. एकभुक्त भोजन ४. अदंत धावन ५. केश-लोंच ६. अस्नान ७. भूमि शयन ।

उक्तंच :—वद समिदिंदिय रोधो लोचो ,

अवा सयम चेल मण्हाणं ।

खिदि सयण मदंतवणं ,

ठिदी भोयण येपमतंच ॥

पुस्तक का विस्तार बढ जाने के भय से मुनि चरित्र संबंधी सम्पूर्ण वर्णन यहाँ नहीं कर रहे हैं । इस विषय के विशेष ज्ञान के लिये जिज्ञासु व्यक्ति मूलाचार-मूलाराधना अधि-आचार शास्त्रों को देखने का कष्ट करें । यहाँ कुछ विशेष महत्व विषय के बारे में ही प्रकाश डालेंगे । कुछ विषय का वर्णन संदर्भ के अनुसार पहले किया गया है ।

पांच समिति—

समिति—सावधानी पूर्वक जीवों का संरक्षण करते हुए धार्मिक कार्य करना उठना-बैठना आदि को समिति कहते हैं । असावधानी पूर्वक प्रमाद सहित कषाय युक्त होकर कार्य करने से हिंसा होती है । सम्पूर्ण विश्व में सूक्ष्म-स्थूल-चर-अचर जीव भरे हैं जब मुनि लोग आहार-विहार करते हैं तब क्या उनसे जीव घात नहीं हो सकता है ? इस प्रकार प्रश्न होना सहज है । जिस प्रकार स्वयं गौतम गणधर ने महावीर स्वामी से प्रश्न किया था ।

कधं चरे कधं चिठ्ढे कधमासे कधं सये ।
कधं भुजेज्ज भासेज्ज कधं पावंण बज्झाधि ।।
(मूलाचार)

गौतम गणधर पूछते हैं—हे ! भगवान कैसा आचरण करें, कैसे ठहरें, कैसे बैठें, कैसे सोये, कैसे भोजन करे एवं किस प्रकार बोलें कि पाप नहीं बंधे—महावीर भगवान उत्तर देते हैं—

जदं चरे जदं चिठ्ठे जदमासे जदं सये ।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्सइ ।।

हे ! गौतम गणधर यत्न पूर्वक गमन करें, यत्न पूर्वक खड़े हो, यत्न पूर्वक बैठे, यत्न पूर्वक सोयें, यत्न पूर्वक आहार करें, और यत्न पूर्वक बैठें, बोले इस तरह करने से पाप बंध नहीं होता ।

यह है समिति का रहस्य एवं हृदय ।

१. इर्या समिति—सूर्य के प्रकाश में मन को स्थिर करके इधर-उधर नहीं देखते हुए सन्मुख चार हाथ दूरी को देखते हुए देव वंदना विद्या, अध्ययन, स्वास्थ्य संपादन समाधि की खोज के लिये जीवों को बिना घात करते हुए गमन करना इर्या समिति है ।

इससे सिद्ध होता है बिना उत्तम अभिप्राय से इधर-उधर घूमना नहीं चाहिये उससे वृथा समय एवं शक्ति नष्ट

होती है और जीवों का घात होता है ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक चलने से स्वयं की रक्षा–कंकड़–पत्थर–गड्ढा–कांटा आदि से भी स्वयं की रक्षा होती है ।

(२) **भाषा समिति**—हित, मित, प्रिय समयानुकूल आगम अविरोधक बोलने से झगड़ा आदि नहीं होता है इससे गम्भीरता एवं भद्रता-विनय गुण प्रगट होता है ।

(३) **एषणा समिति**—क्षुधा रोग उपशमन के लिये ध्यान-अध्ययन षडावश्यक क्रिया, सेवा आदि धार्मिक क्रियाओं को पालने के लिये जो शुद्ध शाकाहारी भोजन दूसरों को कष्ट नहीं देते हुए सीमित प्रमाण से दोषों को नही लगाते हुए भोजन करना ऐषणा समिति है। सद्गृहस्थ स्वईच्छा पूर्वक, नवधा भक्ति पूर्वक मुनि को स्वयं आह्वान करते हुए देता है उस समय मुनि लोग दीन भाव रहित, याचना भाव रहित होते हुए भोजन ग्रहण करते हैं। इससे सिद्ध होता है आहार दाता के स्वेच्छा भक्ति पूर्वक देने पर मुनि को धर्म के लिये दीनता-हीनता याचक प्रवृत्ति से रहित होते हुए आहार करना चाहिए ।

(४) **आदान निक्षेपण समिति**—धर्म साधन के उपकरणों को सावधानी पूर्वक देखकर एवं कोमल मयूर पिंछी से जीवों का उस उपकरण से सावधानी पूर्वक पृथक करके

उपकरण को उठाना एवं जहां रखना है उस स्थान को भी देखकर एवं जीवों को पिंछी से हटाकर उस उपकरण को रखना आदान-निक्षेपण समिति है।

इससे सिद्ध होता है उपकरण से रहित अनावश्यक वस्तुओं को उठाना रखना भी नहीं चाहिए। क्योंकि उससे समय एवं शक्ति का दुरुपयोग होता है।

(५) **उत्सर्ग समिति**—ग्राम, नगर से दूर एकाँत विस्तीर्ण निर्जंतुक एवं बाधा रहित स्थान को पिंछी से परिमार्जन करके मल मूत्र विसर्जन उत्सर्ग समिति है।

इससे सिद्ध होता है मल-मूत्र ग्राम के समीप भी विसर्जन नहीं करना चाहिए। क्योंकि अयोग्य स्थान में मलमूत्र विसर्जन करने से जनता को कष्ट होता। ग्राम नगर आम स्थान अस्वच्छ हो जाता है वातावरण दूषित हो जाता है जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं एवं फैलते हैं। अनुपयुक्त स्थान एवं मनुष्य देखते हुए अवस्था में या अस्थान में मल-मूत्र विसर्जन करने से निंदा होती है, ग्लानि उत्पन्न होती है और आयु क्षय भी होती है।

वर्तमान भारत में गृहस्थ लोग घर की गन्दी वस्तुएं यहां तक कि मल-मूत्र भी आमरास्ता या राज मार्ग में निः संकोच होकर फेंकते हैं। चाय पीकर चाय का प्याला रास्ते में ही फेंक देते हैं, चाट खाकर पत्ता को रास्ते में ही

फेंकते हैं, पान खा कर पान पकि यत्र तत्र गाड़ी में थूकते हैं। बीड़ी सिगरेट पीकर झूठन शेष भाग जहां तहां फेंकते हैं। कफ को जहां तहां थूकते हैं। यह सब असभ्यता अनागरिकता एवं अशिक्षितपना का परिचायक है। हमारे देशवासी वर्तमान आक्षरिक शिक्षित थोड़े बहुत हुए हैं परन्तु यथार्थ से नैतिक शिक्षा से दूर हट रहे हैं। बाहर बगुला के समान है परन्तु अन्तरंग में कौवे से भी काले हैं महात्मा गांधी को जातीय पिता एवं महा आदर्श पुरुष मानते हुए भी उनका गुण गान करने में नहीं थकते हुये भी उनका आदर्श का एक कण भी अनुकरण में कोई लाते हैं क्या ? महात्मा गांधी विनोबा भावे केवल स्वयं का संडास गृह स्वच्छ नहीं करते थे किन्तु गांव गांव में घूम कर वहां के रास्ते, तालाब, संडास गृह भी स्वच्छ करते थे। क्या आज उस आदर्श को हृदय साक्षी पूर्वक विचार करके इन्हें कोई अनुकरण करता है ? देश में अस्वच्छता फैला कर देश की पवित्रता नष्ट कर रहे हैं। विदेश का अंधानुकरण करते हुए उनके फैशन भोग विलासता नैतिक कामुकता आदि दुर्गुणों को ग्रहण कर रहे हैं। परन्तु विदेश में जो स्वच्छता, देश प्रीति प्रामाणिकता स्वावलंबनता आदि गुण हैं उसका क्या अनुकरण कर रहे हैं ?

पंचेन्द्रिय निरोध—

इन्द्रियों की अन्यथा प्रवृत्ति को अर्थात् दुष्टता प्रवृत्ति को निरोध करके सत प्रवृत्ति में उनको लगाना इन्द्रिय निरोध है ।

(१) स्पर्शन इन्द्रिय निरोध—

स्पर्शन इन्द्रिय मृदु स्पर्शादि को चाहती है एवं विषय की प्राप्ति के लिये नैतिक बंधन को भी तोड़ देती है जिससे कि अनेक दुष्प्रवृत्ति फैलती हैं । इस प्रकार अनीति से बचने के लिये शक्ति संरक्षण के लिए एवं शक्ति सदुपयोग के लिये स्पर्शन इन्द्रिय को यथार्थ कार्य में विनियोग करना चाहिये। स्पर्शन इन्द्रिय (उपस्थ इन्द्रिय) के वशवर्ती होकर महान शक्तिशाली जंगल में स्वच्छन्द विचरण करने वाला मत्त-हस्ती बन्धन में पड़कर के मनुष्य की आज्ञा अनुसार चलता है बैठता है और अनेक काम करता है ।

(२) रसना इन्द्रिय निरोध—

रसना (जिव्हा) इन्द्रिय मधुर स्वादिष्ट रस को चाहती है । रसना इन्द्रिय के वशवर्ती होकर जीव मांस, अण्डा, मछली आदि अभक्षों का भी भक्षण करता है । जिससे कि महान् पाप वशवर्त्ती होकर रस लोलुपी जीव असमय में भी अति भोजन करता है । पानी में स्वच्छंद

विचरती हुई मछली कांटे में लगा खाना को खाने के लिये दौड़ती है जिससे जीवन ही गमा देती है। वर्तमान जनता जिह्वा इन्द्रिय के वशवर्ती होकर घर का शुद्ध, कम खर्चीला भोजन करना छोड़कर अशुद्ध, अधिक खर्चीला, बासा आहार होटल में करता है। होटल में स्वच्छता नहीं रहती है। बचा हुआ बासा आहार भी मिलाकर पुनः ताजा आहार बनाकर दे देते हैं, जिस पात्र में रोगी आदि भोजन करते हैं उस पात्र को भी स्वच्छता पूर्वक नहीं धोते हैं उस पात्र में ही दूसरों को भोजन देते हैं। जिससे रोग फैलता है होटल में खाद्य वस्तुओं को ढांक कर भी नहीं रखते हैं जिससे मक्खी भिन भिन करती है और उसमें ही टट्टी पेशाब करती है। धूल आदि गिरकर के उसमें ही जम जाते हैं, बनाने वाले भी स्वच्छता से नहीं रहते हैं, बनाते बनाते उनका पसीना भी भोजन में गिर जाता है, यहां तक कि नाक आदि छिड़कने पर ही हाथ नहीं धोते हैं। जिस पात्र में भोजन बनाते हैं उस पात्र को भी स्वच्छता से नहीं धोते हैं, मात्र परोसने वाले पात्र ऊपर से ही चमकीला रहता है। जिस पात्र में सब लोग खाते हैं उस पात्र को एक बाल्टी के पानी में डुबा देते हैं। वहीं गन्दी बाल्टी के पानी में ही अन्य रोगी-कुष्ठी-भिखारी-व्यक्तियों के पात्र को भी डुबाकर उस पात्र में पुनः परोसते हैं। फिर विचार

करिये कि वह भोजन पात्र किस प्रकार शुद्ध है ? इस प्रकार घृणित, गन्दगी सब की भूठन से मिला हुआ मद्य, मांस, कंद-मूल बासे आहार से युक्त भोजन खाने से आरोग्य के पतन के साथ-साथ नैतिक एवं धार्मिक पतन हो जाता है। केवल जिह्वा इन्द्रिय को लगाम में रखने से उक्त अनर्थ नहीं हो सकते हैं।

(३) घ्राण इन्द्रिय निरोध—

नासिका सुगन्ध को चाहती है । उसके लिये जीव सुगन्धित इत्र, सेंट, स्नो, पावडर आदि इस्तेमाल करता है केवल घ्राण इन्द्रिय के वशवर्ती होकर जो भ्रमर लकड़ी को भी काट सकता है वह कमल में बन्द होकर प्रिय प्राण को भी गमा देता है। वर्तमान में सेंट आदि बनाने के लिए अनेक प्रकार के जीवों को मारकर उनके अवयवों से सेंटादि बनाया जाता है। इस प्रकार सुगन्धित द्रव्यों के प्रयोग से हिंसा का भी दोष लगता है। कृत्रिम खाद्य वस्तुओं को सुगन्धित बनाने के लिए हिंसात्मक, रासायनिक द्रव्य मिलाते हैं इस प्रकार वस्तुओं के सेवन से स्वाथ्य के साथ-साथ धर्म को भी धक्का पहुँचता है।

(४) चक्षु इन्द्रिय निरोध—

आँख, मनोहर, सुन्दर वर्ण को देखना चाहती है। चक्षु

इन्द्रिय के वशवर्ती होकर पतंगा अग्नि से आकर्षित होकर अग्नि में जलकर राख हो जाता है। वर्तमान में चक्षु इन्द्रिय को पुष्ट करने के लिए अनेकानेक अश्लील, काम उत्तेजक एवं अनैतिक सिनेमा का प्रचार–प्रसार हो रहा है। अभी तो सिनेमा देखना मानो जनता का एक अनिवार्य कर्त्तव्य ही हो गया है। सिनेमा देखने से समय का दुरुपयोग, अर्थनाश, नैतिक पतन, कुसंस्कार का प्रशिक्षण होता है एवं आँख स्वाध्य को क्षति पहुँचाता है सिनेमाहाल में धूम्रपान होता है एवं उपयुक्त प्राण वायु नहीं मिलने से स्वाध्य को महति क्षति पहुँचती हैं एवं संक्रामक रोग फैलता है। चक्षु इन्द्रिय के वशवर्ती होकर रुपये देकर कुसंस्कार एवं रोग को खरीदते हैं। वर्तमान में जो कुसंस्कार फैला हुआ है, नैतिक पतन हो रहा है, चोर बाजारी, (दो नम्बर का काम) डाकू बनने का प्रशिक्षण मिल रहा है, शील का सत्यानाश हो रहा है उनका उत्तरदायित्व बहु-अंश में चित्र मन्दिर (सिनेमा गृह) हैं। सिनेमा मानो एनिमा हैं। जैसे—पेट स्वच्छ के लिये एनिमा लिया जाता है उसी प्रकार धार्मिक, नैतिक भावों को हृदय से निकालने लिए सिनेमा रूपी एनिमा लिया जाता है। इस सिनेमा रूपी एनिमा से फैशन धार्मिक, नैतिक सदाचार हृदय से निकल जाते हैं। सिनेमा से फैशन, आराम-खोर, बाबू-चाल, टीपटॉप, वैदेशिक कुत्सित, रीति-रिवाज आदि का प्रशिक्षण मिलता हैं।

कोई भी साधन से रचनात्मक एवं विध्वंसात्मक कार्य मनुष्य स्वयं विवेक से कर सकता है। सिनेमा के माध्यम से नैतिक, शैक्षणिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि प्रशिक्षण दिया जाता है तो सिनेमा मनुष्य समाज के लिए वरदान स्वरूप होता जैसे – वर्तमान मे टी. वी. में रामायण चलती है वह रामायाणादि नैतिक, विनय, राजनीति, नीति, भातृ–प्रेम, पितृ–भक्ति, गुरु–आज्ञा पालन आदि के लिये प्रेरणा स्रोत हैं। ऐसे कार्यक्रमों का समाज में गौरव होना चाहिये किन्तु अनैतिकता का विरोध भी होना चाहिए।

(५) कर्ण इन्द्रिय निरोध—

कान, कर्ण, रसायन सुललित राग–रागिणी पूर्ण संगीत स्वर शब्द आदि चाहता है। कान के वशवर्ती होकर स्वछन्द कोमल घास इच्छापूर्वक चरने वाला हरिण जोकि वायु के वेग से गति करता है। वह भी शिकारी के स्वर ध्वनि से कीलित होकर प्रिय प्राणों को गमा देता है। अब कर्ण इन्द्रिय को पुष्ट करने के लिये रेडियो, टी. वी., सिनेमा में अश्लील, अनैतिक गाना विशेषकर आता है। अश्लील गाने का इतना प्रभाव है कि और मनुष्य इतना प्रभावित है कि छोटे बच्चे उन अश्लील गानों को खाते-पीते, चलते-फिरते हुए गुन-गुनाते हैं। किन्तु धार्मिक, राष्ट्रीय गाना बुलवाने पर भी नहीं बोल पाते हैं। जैनियों के बच्चों को

जैनियों का महामंत्र-णमोकार मंत्र भी नहीं आता है। परन्तु सिनेमा, गाना, ऐवसन, चाल-चलन जीवन के प्रत्येक समय में उभरते रहते हैं।

करि मृग मीन अलि सरमा, जो एक-एक पर मरते हैं।
उन्हीं की क्या दशा होगी, जो पांचों ही को मरते है।।

हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के कारण, हरिण कर्ण इन्द्रिय के कारण, मछली रसना इन्द्रिय (जीभ) के कारण, भ्रमर नाक के कारण, पतंग आँख के कारण नाश को प्राप्त होता है। परन्तु खेद की एवं विचार की बात है कि वे तो पशु हैं, अविवेकी हैं, वे एक-एक इन्द्रिय के वशवर्ती होकर प्रिय प्राण गवा देते है। किन्तु विवेकी-विचारशील विश्व के प्रति उन्नतशील प्राणी मनुष्य पांचों इन्द्रिय का दास होकर जो उनके पीछे भागता रहता है उसकी क्या दशा होगी ? थोड़ा स्वयं विचार करिये।

उपरोक्त दोष और गुण का विचार कर आत्म हितैषी जितेन्द्रिय स्वतन्त्र प्रेम के रसिक साधु महात्मा पांचों इन्द्रियों को कश्यप (कछुआ) के समान निरोध करके उपयुक्त कार्य में उनको लगाते हैं जिससे कि उनके प्रगति-पथ में किसी प्रकार अवरोध नहीं आवें।

सात विशेष गुण—

(१) नग्नत्व-(अचेलक) गुण—

वत्थाजिण वक्केण य अह्वा पत्तादिणा असंवरण ।
णिब्भूसण णिग्गंथं अच्चेलक्कं जगदि पुज्जं ।।
(मूलाचार)

वस्त्र, चर्म, वल्कलों से अथवा पत्ते आदिकों से शरीर को नहीं ढकना, भूषण अलंकार से और परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ वेष जगत् में पूज्य अचेलकत्व नाम का मूलगुण है ।

अचेलक का अर्थ निर्ग्रन्थता या दिगम्बर=दिक्+अम्बर । दिक् अर्थात् दिशा, अम्बर का अर्थ वस्त्र ।

दिक् एवं अम्बर यस्य सः दिगम्बरः । जिसका वस्त्र दिक् अर्थात आकाश हो वह दिगम्बर । यहाँ दिगम्बर उपलक्षण मात्र है । केवल वस्त्र रहित होने से कोई दिगम्बर नहीं होता है । जैसे गाय, बैल, पक्षी, नारकी, पागल आदि । दिक् के समान अन्तरंग, बहिरंग स्वच्छ, निर्मल व्यापक निःसंग रूप को दिगम्बर कहते हैं । उसका दूसरा नाम निर्ग्रन्थता है । निर्ग्रन्थता का अर्थ क्रोध-मान-माया-लोभ-अविद्या कुसंस्कार काम आदि अन्तरंग ग्रंथि धन-धान्य, स्त्री-पुत्र सम्पत्ति विभूति

आदि बहिरंग ग्रंथि से जो विमुक्त है उसको निर्ग्रन्थ कहते हैं।

अशक्य धारणं चेदं जन्तुनां कातरात्मनाम् ।
जैनं निस्संगता मुख्यं रूपे धीरं निषेव्यते ।।

(आदि पुराण)

जिनेन्द्र भगवान के अलौकिक, अतिश्रेष्ठ, सहज-सरल प्राकृतिक बालकवत् निर्ग्रन्थता रूप प्राकृतिक एवं सार्वभौमिक स्वरूप होने से इसका महत्त्व प्रत्येक युग में प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में पाया जाता है।

स्वयं महात्मा बुद्ध कहते हैं कि मैंने पहले नग्न निर्ग्रन्थ रहा, अनिश्चित विहार किया, हाथ में आहार किया है। अनेक दुरुह (कष्ट) तपश्चरण किया है, इससे सिद्ध होता है कि स्वयं बुद्ध निर्ग्रन्थ थे परंतु यह दिगम्बर मार्ग (श्रमण मार्ग) कठिन होने से इस मार्ग को छोड़कर उन्होंने मध्यम मार्ग को अपनाया,

(त्रिपिटक से उद्धृत)

विशाख–वश्र धम्म पदत्थ कथा में लिखा है कि एक श्रेष्ठी के भवन में ५०० दिगम्बर जैन साधुओं ने आहार ग्रहण किया था। 'महावग्ग' से विदित होता है कि वैशाली में दिगम्बर जैन साधुओं का विहार होता

था। महा परि निर्वाण सूत्र में भी दिगम्बर साधु का का उल्लेख पाया जाता है। विनय पिटक में भी दिगम्बर साधु के विहार का उल्लेख है।

वैदिक साहित्य में प्राचीनतम ऋग्वेद में नग्न साधु को "वातरशना" शब्द द्वारा बताया है।

"मुनयो वानरसनाः पिशंगा बसते माला"

ऋग्वेदमंडल १०-२-१३६२

युजुर्वेद में महावीर भगवान को नग्न बताते हुए उनकी उपासना को संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय रूप रात्री भय तथा धन मद, शरीर मद आदि निवारक कहा है।

"आतिथ्य रूपं मासर महावीरस्य नग्नहुः।
रुपमुपासदामेत त्रिस्त्रो रात्रीः सुराः सुतः॥"

यजुर्वेद अध्यात्म १६ मन्त्र १४

एकाकी निःस्पृह शान्त पाणि पात्रो दिगम्बरः।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनि मूलन क्षयः॥

भर्तृहरि शतक

हे शम्भो ! मैं कब अकेला, कामना रहित, शांत कर पात्री (हाथ में भोजन करना) दिगम्बर और बन्धन निर्मूलन करने वाला कब होऊँगा।

श्रमना वातरासन (निर्ग्रन्थ) आत्म विद्या में विशारद होते है।

मुण्डी नग्नो मयुराणां पिच्छीधारी महाव्रतः। मुण्डीत, नग्न, मयूर पीछी धारो महाव्रत धारी मुनि होते हैं।

"नगण्ठेसु पिभे करे वियापरा होहंति"

अशोक स्तंभ

(दिल्ली फिरोज शाह कोटला शिला लेख)

कटि सूत्रं च कौपीनं दंडवस्त्र कमण्डल।
सर्वमप्सु विसज्याय जात रुप धरश्चरेत॥

(नारद परिव्राजक उपनिषद)

कटि सूत्र, कौपीन (लंगोट) दण्ड, वस्त्र, कमण्डल को जल में विसर्जन करके जात रूप अर्थात् नग्न रूप को धारण करके विचरण करना चाहिए।

हमारे इस्लाम धर्म वाले बन्धुओं देखिये शायर जलालुदीन ने दिगम्बर नग्न पद को दिव्य ज्योति से अलंकृत बताते हुए कहा कि वस्त्र धारी व्यक्ति की दृष्टि तो धोबी की ओर रहती है—

"मस्त बोला मुहतसिव से काम जा होगा क्या नंगे

से तु ओहदा बरा है। नजर धोबी पं जमापोस की, है तजल्ली जेवेर उरितातंनी।

नग्न दरवेश तार्किक से कहता है—अरे भाई तू जा और अपना काम कर तू दिगम्बर सा नहीं बन सकता। वस्त्र पहनने वाले की दृष्टि सदा धोबी की और रहती है। दिगम्बर की शोभा देवी प्रकाश रूप है। या तो तुम नग्न दरवेशी से कोई संबंध नहीं रखो अथवा उनका सदृश्य दिगम्बर और स्वाधीन बन जावो। यदि तुम पूर्णतया दिगम्बर नहीं बन सकते तो अपने वस्त्रों को थोड़े परिमाण में रखो।

आज से ३०० वर्ष पूर्व शाहजहां बादशाह के राज्य में मुसलिम सूफी फकीर मुहम्मद अली नग्न रूप में विहार करता था उसका मजार दिल्ली के जामा मस्जिद के बांये भाग में है उसका कहना था कि परमात्मा जिस पर दोष देखता है उसे वस्त्र पहना देता है। किन्तु जो निर्दोष है उसे नग्न ही रहने देता है।

पोशाद लिबास हरकरा एबेदीक।
बे एबा रा लिबासे उरियानी दाद ।।

अब्दुल कासिम जिलानी नामक मुस्लिम साधु नग्न दिगम्बर रहा करते थे।

The higher Saints of Islam Called Abduls went about perfectly naked.

["Mysticism and Magic in Turky" by Miss huecy M gonet.]

अब देखिये ईसाई धर्म वालों को यहां नग्न साधु का महत्व—

बाइबिल में लिखा हैं–'आदम तथा उसकी पत्नी (ईव) नग्न उत्पन्न हुए थे तथा उद्यान में नग्न रहते थे उनके मन में लज्जाने का स्थान नहीं बनाया था। जब उन्होंने निषिद्ध के वृक्ष के फल को खाया तो उन्हें यह ज्ञान होने लगा कि वे नग्न हैं—

And they (Adam and Eve) were both naked the man and his wife were not.ashamed

(Gensis 11-25)

When the ate the fruit of the forbidden tree, they felt and knew that they were naked.

Ibid 11-7-11

बाइबिल में यह भी लिखा है कि "उसने अपने वस्त्र भी अलग कर दिए और संमुअलके समक्ष इस प्रकार की घोषणा की तथा दिन रात दिगम्बर रहा उस पर उन लोगों ने पूछा, क्या साल भी पैगम्बरों से हैं।

And he stripped his clothes also and prophesised before samualin samuel in the like manner and they lay down naked all day and night. Wherefore they said "Is saul also among the prophets.

Samual XIX 24

उसी समय प्रभु ने अमोज के पुत्र ईसाईया से कहा—जा तू भी अपने कपड़ों को दूर कर दें और जूतों को उतार डाल । उसने ऐसा ही किया वह नग्न हो नंगे पैर फिरने लगा ।

At the same time the lord spoke the Isaiah the son of Amoj Saying go and loose the sack clothes from off they loins and they put off their shoes from the foot Aad he did so walking naked and bare footed.

Isaiah XX-2

ईसाई साधु पीटर ने लिखा है । "हमें अपने पास कुछ भी नहीं रखना चाहिए । परिग्रह हम सबके लिये पापरूप है इसका जैसे भी हो त्याग करना है उसे पापों से बचना है ।

"To all of us possession are sins........

The deprivations of these in Whatever way it may take place is the removal of sin."

Clemertine Homities

शंकराचार्य ने "विवेक चूड़ामणि में" लिखा है कि जिस योगी के पास दिशारूपी वस्त्र होते हैं। अर्थात् दिगम्बर होते हैं जिन वस्त्रों को धोने की जरूरत नहीं रहती सुखाने की आवश्यकता नहीं रहती। उसको श्रेष्ठ अवस्था में यह जीव पूर्ण निराकुल हो ब्रह्मदर्शन जनित आनन्द प्राप्त करने में समर्थ होता है।

श्री रामकृष्ण कथामृत में लिखा कि रामकृष्ण ने परमहंस अवस्था धारण की थी।

जागने पर भक्तों ने देखा कि प्रभात हो चुका है राम कृष्ण बालक के समान दिगम्बर नग्न हैं जिसके शरीर पर एक धागा मात्र भी नहीं। उक्त स्वामीजी ने अपने अश्वनी कुमार दत्त से कहा था। मैं सभी भौतिक वस्तुओं को भूल जाता हूं उस समय वस्त्र भी छूट जाता है।

आरोह स्वरथे पार्थं, गाण्डीवं करे कुरु ।
निर्जिता मेदिनी ये, मेनिर्ग्रन्थो यस्य सम्मुखे ॥
(महाभारत)

जब अर्जुन युद्ध के लिये तैयार हो रहे थे उस समय एक नग्न दिगम्बर मुनिराज आ रहे थे। कृष्ण ने मुनिराज को देखकर कहा अरे अर्जुन अब क्या देखता है शीघ्र रथ पर सवार हो गाण्डीव को हाथ में लो देख यह अपने समक्ष

निर्ग्रन्थ मुनिराज हैं अभी युद्ध करने से मै मानता हूं पृथ्वी की विजय तुम्हारे हाथ में है ।

पद्मनि राजहंसस्य निर्ग्रंथा च तपोधना ।
यस्मिन्न क्षेत्रे विचरन्ति सुभिक्ष तत्र निश्चयः ॥

सुलक्षणी पद्मनि स्त्री, राजहंस, निग्रंथ तपोधन जिस क्षेत्र में विचरण करते हैं वहां निश्चय से सुख शांति, सुभिक्ष होता है ।

इससे सिद्ध होता है निर्ग्रन्थ रूप शुभ सूचक भी है एवं मंगलमय है ।

"नग्नत्वं सहजं लोके विकारो वस्त्र वेष्टितम्"
(यशस्तिलक चम्पू)

नग्नत्व विश्व में सहज रूप है शरीर पर वस्त्र पहनना अपने विकार को ढांकना है । जब मनुष्य उत्पन्न होता है तब नग्न ही रहता है । बाल्यावस्था में भी नग्न रहता है । बालक की नग्नता को देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं । बालक कभी स्वयं की नग्नता के कारण किसी प्रकार लज्जा का अनुभव नहीं करता । कपड़ा पहिनने की इच्छा नहीं रहती है यहां तक कि कपड़ा पहनाने से बच्चे रोते भी हैं और कपड़ा फाड़कर फेंक भी देते हैं । वह निर्विकार रूप से घूमता-फिरता है । उसको सब कोई लाड-प्यार से

खिलाते-पिलाते हैं। परन्तु माता-पिता लोग गर्मी, सर्दी, डांस-मच्छर आदि से बालक की रक्षा करने के लिये बालक को कपड़ा पहनाते हैं। जब वह बड़ा होता है तब वह संसार-प्रपंच में, मोह-माया में फँसता है तब वह अपने विकार भाव को छिपाने के लिये कपड़ा आवश्यक मानता है।

इससे सिद्ध होता है कपड़े का मूल उद्देश काम विकार को ढकना शरीर की रक्षा करना है।

परंतु निर्ग्रंथ मुनि बालकवत् सरल विकार भावे से रहित होने से कपड़े की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। शरीर को समस्त अनर्थ का मूलकारण एवं परद्रव्य मानकर शरीर का ममत्व भाव भी त्याग देते हैं। इसलिये शरीर रक्षा के लिये भी वस्त्र धारण नहीं करते हैं राग-मोह काम भाव एवं भौतिक सुंदर उपासना से दूर होने के कारण शृंगार के लिये भी वस्त्र धारण नहीं करते हैं। वे सोचते हैं हम नंगे आये और नंगे ही जायेंगे फिर बीच में वस्त्र धारण कर के दंगा करने की क्या आवश्यकता है।

वे अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह त्याग करने के कारण वस्त्र का भी त्याग कर देते हैं इसका विस्तृत वर्णन

इस पुस्तक के अपरिग्रह महाव्रत के वर्णन में आया है। वहां से देखिये।

कपड़े के लिये पैसा अर्थ चाहिये, पैसा तो साधु अपने पास नहीं रखते हैं। पैसा के लिये याचना करनी पड़ेगी परंतु याचना करना स्वाभिमानी मुनि के लिये मरण से भी दुःखदायी लगता है।

कहा भी है कि—

मांगन मरन समान है, मत मांग कोई भीख।
मांगन से मरणा भला, यह सद् गुरु की सीख॥

घोर वीर तप करत तपोधन, भये क्षीण सूखी गल बांही।
अस्थि चांम अवशेष रहो, तन न सांजाल झलके तिस मांही।
औषधि असन पान इत्यादिक प्राण जाउ पर याचत नांही।
दुर्द्धर अयाचिक व्रत धारें, करे न मलिन धरम पर छाहीं।
(बाईस परि.)

जब मुनि प्राण घातक रोग, तृष्णा होने पर याचना नहीं करते हैं तब सामान्य कपड़े के लिये जो कि प्राण धारण के लिये नितान्त आवश्यक नहीं है फिर उसके याचना नहीं कर सकते हैं।

इसी प्रकार जो सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की आदर्श मूर्ति हैं उनको सब को आदर-पूज्यता की दृष्टि से

देखना चाहिये । उनको देखकर घृणा नहीं करना ।

अधमा धनमिच्छन्ति, धनं मानं च मध्यमा ।
महान्तो मान मिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥

चाह गयी चिन्ता मिटी, मनुआ बे परवाह ।
जिन्हें कुछ नहीं चाह वे नर शहनशाह ॥

(२) स्थिति भोजन—

समपाद खड़ा होकर अंजुलि पुट में भोजन लेना स्थिति भोजन हैं। इसका उद्देश्य यह है कि जंघा पर खड़े होने के योग्य शक्ति रहेगी, तब तक धर्म साधन उत्तम रीति से हो सकता है। उसके बाद धर्म साधन होना कठिन हो जाता है एवं परावलंबी होना पड़ता है, इसलिए स्वावलम्बन के लिए एवं दूसरों से अपना काम कम लेने के लिए जंघा शक्ति या शारीरिक शक्ति क्षीण होते-होते मुनि लोग आगमानुकूल क्रमशः विधिवत् आहार आदि को त्याग करते-करते समाधि लेने का कार्य करते हैं।

(३) एक भुक्त भोजन—

दिन में सूर्य उदय के दो घड़ी पश्चात् एवं सूर्य अस्त के दो घड़ी पहले एवं मध्यान्ह सामयिक का समय छोड़कर केवल एक बार शुद्ध शाकाहार भोजन सद्गृहस्थ द्वारा

स्वेच्छापूर्वक भक्ति पूर्वक देने पर लेना एक भुक्त आहार (भोजन) है। इससे आरोग्य ठीक रहता है। ध्यान-अध्ययन सुचारु रूप से चलता है, एवं इन्द्रियां उत्तेजित नहीं होती है। ब्रह्मचर्य व्रत में दोष नहीं लगता है। एक दिन में अधिक बार भोजन करने पर रोग होता है, आलस्य, प्रमाद उत्पन्न होता है। एवं इन्द्रियां उत्तेजित होती हैं एवं ब्रह्मचर्य निर्मल नहीं रहता है। कहा भी है कि—

"कम खाना गम खाना, न हकिम पर जाना न हाकिम पर जाना।"

लोक उक्ति भी है कि—

एक बार खावे सो योगी,
दो बार खावे सो भोगी।
तीन बार खावे सो रोगी,
चार बार खावे सो श्मशान अर्थी।

अभी प्राकृतिक चिकित्सा में भी एक बार भोजन को आरोग्य की दृष्टि से महत्व दिया गया है।

(४) अदंत धोवन—

श्रृंगारता को कम करने के लिए निर्ममत्व भाव के लिये एवं मुख में स्थित सूक्ष्म जीवों की रक्षा के लिए

मुनि लोग दंत मंजन नहीं करते हैं। किन्तु गरम पानी से मुख शुद्धि करते हैं।

(५) केशलोच—

अदन्ये वैराग्यश्चापि कृते ये केशलोचनं।
यती पवराजं वीरत्व, वृतभूषण दीपक ।।

केशलोंच से अदीनता, वैराग्यता, वीरत्व एवं व्रत में निर्मलपना प्रकट होता है।

केश बढ़ने से केशों में जूँ-लीख आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। शिर मर्दन से, सोने से उनका घात होना संभव रहता है, इसलिए साधु लोग दो-तीन या अधिक से अधिक चार महीने के भीतर निश्चित केश लोच करते हैं। जिस दिन केशलोच करते हैं, उस दिन उपवास करते हैं एवं दोषों का परिमार्जन (प्रतिक्रमण) करते हैं। केश लोच के अभाव में केशों को काटना पड़ेगा। काटने के लिए कैंची, उस्तरा आदि चाहिए या उसके बनाने वाले क्षौरकार (नाई) चाहिये और इसके लिये रुपया चाहिये। रुपये के लिए याचना करनी पड़ेगी। इससे दीनता हुई इस प्रकार दीनता न हो, उसके लिए मुनि लोग केशलोच करते हैं। केशलोच से आत्म शक्ति, धैर्य, निर्ममत्व, वीतरागता, वीरत्व आदि प्रकट होते हैं।

केशलोच से मुनियों के धर्म के प्रति कितनी आस्था प्रेम एवं समर्पण भाव है प्रगट होता है।

केशलोच को करते हुये मानो मुनि लोग क्लेशों को उखाड़ कर फेंकते हैं। इससे उनका वीतराग भाव प्रत्यक्ष रूप से प्रगट होता है। जो केशलोच देखते हैं उनके हृदय में धर्म के प्रति आस्था प्रकट होती है। यदि केशलोच नहीं करेंगे तो केश बढ़ेंगे, केशों को स्वच्छ रखने के लिये साबुन, पानी आदि की भी आवश्यकता होगी। उससे आरंभ और हिंसा का भी दोष लगेगा। उपरोक्त समस्त दोष-गुण का विचार करके स्वेच्छापूर्वक स्वयं के हाथ से या साधर्मी के हाथ से केशलोच करते हैं।

(६) अस्नान—

स्नान के लिए पानी चाहिए, स्नान करने के बाद पानी बहता है, जिससे सूक्ष्म जीवों की विराधना होने की संभावना विशेष रहती है। यदि जलाशय में डूब कर स्नान करेंगे तो भी जीवों का घात होगा। स्नान से सुकुमारता, सुन्दर प्रियता, आदि भाव प्रगट होते हैं। इसलिए मुनि लोग दोनों संयमों का पालन करने के लिए स्नान नहीं करते हैं।

अण्हाणं घोर गणं संजम दुग पालयं मुणिणो

। मूलाचार ।

मुनि के प्राणी संयम और इन्द्रिय संयम पालन करने रूप घोर गुण स्वरूप अस्नान व्रत होता है।

उपनिषद में भी कहा है कि—

स्नानं त्रिषवणं प्रोक्तं बहुदक वनस्थयोः।
हंसे तु सकृदेव स्यत्परहंसे न विद्यते।
हंसस्यैकबारम् परम हंसस्य मानस स्नानम्।
तुर्यातीतस्य भस्म स्नानं अवधूतस्य वायव्य स्नानं॥

(उपनिषद)

बहुदक (वन में रहने वाले यति) तीन बार जल से स्नान करते हैं, हंस एक बार जल से स्नान करते हैं, परम हंस मानसिक स्नान करते हैं। तुर्यातीन भस्म से स्नान करते हैं, अवधूत वायु से स्नान करते हैं।

परम हंसा श्रमस्योहि स्नानादेर विधानतः।
अशेष चित्तं वृत्तीनां, त्यागं केवल माचरेत्॥

(नारद परिव्राजक)

परम हंस आश्रम के पहले-पहले तक स्नान का विधान है परन्तु परमहंस स्थानापन्न महात्मा केवल सम्पूर्ण विकारात्मक चित्त वृत्तियों का त्याग करते हैं। उनके लिए स्नान का विधान नहीं है।

स्नान अनेक प्रकार का होता है, जल स्नान, सूर्य

किरण स्नान, वायु स्नान, भस्म स्नान, तेल स्नान, (अभ्यंगस्नान) मानसिक स्नान, मंत्र स्नान, व्रत स्नान आदि । जो गृहस्थ में रहकर गृहस्थ संबंधी व्यापार धंदा विषय भोग आदि करते हैं । उनके शरीर शुद्धि के लिये जल स्नान की आवश्यकता होती है । जो उपरोक्त काम को छोड़कर ब्रह्मचर्य में रहकर आत्म साधन करते हैं । उनके लिए मानसिक स्नान, मंत्र स्नान, व्रत स्नान, पर्याप्त है । कहा है—

ब्रह्मचारी सदा सुखी, ब्रह्मचारी सदा पवित्र रहते हैं ।

(७) भूमि शयन—

फासुय भूमि परसे अप्पम संथारिदम्हि पच्छण्ण ।
दंडं धाणुव्व सेज्जं खिदि सयणं एय पासेण ।।
(मूलाचार)

अल्प संस्तर में या संस्तर रहित एकांत सूक्ष्मादि जीव जन्तु से रहित प्रासुक भूमि में दण्डाकार या धनुषाकार शयन करना अथवा एक पार्श्व से सोना भूमि शयन व्रत है । शयन के लिये घास, (सुखी घास) धान्य का पियार चटाई, लकड़ी का फलक, शिला (पत्थर) आदि का उपयोग साधु लोग करते हैं । यह भी भूमि शयन व्रत के अन्तर्भूत है ।

पलंग, गद्दा आदि में सोने से विलासिता, कामुकता आदि की वृद्धि होती है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार और प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार भी भूमि प्रदेश में नंगे पाव से चलना एवं नग्न शरीर होकर स्वच्छ भूमि पर शयन करना आरोग्य के लिये हितावह है। अभी तो विदेश में तथा कहीं-कहीं भारत में भी स्वास्थ्य संपादन के लिये भूमि में शयन करते हैं। भूमि में शयन करने से स्नायु, शरीर दृढ़ होते हैं एवं रक्त संचार सुचारु रूप से होता है।

सप्तम परिच्छेद

अनेकान्त एवं स्याद्वाद धर्म

अनेकान्त—

अनेक धर्मेण युक्तः प्रत्येक द्रव्यं भवति स्वभावतः।
तेन प्रत्येकं द्रव्यं अनेकान्त मयः स्वभावतः ।।

स्वभाव से ही प्रत्येक द्रव्य अनेक धर्म से युक्त होता है इसलिये प्रत्येक द्रव्य स्वभावतः ही अनेकान्तमय है। रामचन्द्र एक मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे पिता दशरथ की अपेक्षा पिता, भाई लक्ष्मण की अपेक्षा बड़े भाई, सीता की अपेक्षा पति, जनक की अपेक्षा दामाद (जमाई) सुग्रीव की अपेक्षा मित्र, रावण की अपेक्षा शत्रु, हनुमान की अपेक्षा प्रभू आदि अनेक धर्म से युक्त थे। राम एक होते हुये भी उपरोक्त दशरथ की अपेक्षा पुत्र होते हुये भी लव-कुश की अपेक्षा पिता रूप विरोधी गुण से युक्त थे। तो भी अपेक्षा की दृष्टि से कोई प्रकार विरोध नहीं है। इसी प्रकार अन्यान्य गुण अपने अपने स्थान पर वे गुण अविरुद्ध एवं उपयुक्त हैं।

१०० संख्या १० संख्या की अपेक्षा अधिक होते हुए भी १००० संख्या की अपेक्षा कम है। जैसे सेव फल लीजिये नारियल से छोटा होते हुये भी आँवले की अपेक्षा बड़ा है। आंवला सेव फल से छोटा होने पर भी इलायची की अपेक्षा बड़ा है। घी निरोगी के लिये शक्ति दायक होते हुए भी ज्वर रोगी के लिये हानि कारक है। अग्नि चिमनी में रहते हुए उपकारक है। परन्तु पैट्रोल टंकी में डालने पर अपकारक है। अग्नि एक होते हुए भी पाचकत्व, दाहकत्व, प्रकाशकत्व, आदि गुणों के कारण अनेक भी है। एक आत्मा स्वभावतः एक होते हुए भी अस्तित्व, द्रव्यत्व, प्रेमत्व, अगुरु लघुत्व, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य गुण के कारण अनेक हैं। इस प्रकार विश्व का प्रत्येक द्रव्य अनेक विरोधी गुणों से एवं अविरोधी गुणों से युगपत (एक साथ) युक्त होने के कारण प्रत्येक द्रव्य अनेकान्तमय है।

स्याद्वाद—

एकेन समयेन एकं धर्मः भवति प्रज्ञापनम् ।
अन्य धर्मः ज्ञानार्थ स्यात् शब्द अपेक्षार्थम् ।।

वक्ता एक समय में एक ही धर्म को कह सकता है अन्यः अन्य अनेक धर्म होते हुए भी वह नहीं कर सकता है। प्रतिपादन धर्म को छोड़ अन्य धर्म को स्वीकार करने

के लिये अथवा सूचना के लिये स्यात् या कथंचित शब्द वक्ता प्रयोग करता हैं । अनेकान्त प्रकारण में बताया गया है कि प्रत्येक द्रव्य में अनन्त धर्म विद्यमान रहते हैं शब्द में सीमित शक्ति होने के कारण वक्ता एक समय में एक गुण का वर्णन कर पाता है । अन्य धर्म का नहीं । तो भी अन्य धर्म लोप नहीं होते हैं । किन्तु अविवक्षित हो जाते हैं । जैसे एक वक्ता बोलता है रामचन्द्र दशरथ के पुत्र थे । इस वाक्य में पुत्रत्व धर्म को छोड़कर पितादि अन्य धर्म का वर्णन नहीं किया तो भी पितादि गुण लोप नहीं हो गये । इस पितादि गुण को सुरक्षित करने के लिये उनकी सत्ता स्वीकार करने के लिये स्यात् शब्द का प्रयोग करता है । स्यात् का अर्थ है, अपेक्षा से कथंचित, एक दृष्टि से, । यदि वक्ता हठग्राही पूर्वक बोलेगा कि रामचन्द्र केवल पुत्र ही है तो अन्य पितादि धर्म लोप करने के कारण उसका अभिप्राय एवं वचन मिथ्या हो जायेगा ।

स्याद्वाद के सप्त भंग (प्रकार) है ।

१. **स्यात् अस्ति**–अन्य अपेक्षा द्रव्य नहीं हैं । जैसे रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है ।

२. **स्यात् नास्ति**–अन्य अपेक्षा द्रव्य नहीं । जैसे–रामचन्द्र लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है ।

३. **स्यात् अव्यक्तव्य**–एक साथ दो गुणों का वर्णन एक शब्द में नहीं हो सकता है। जैसे–रामचन्द्र, दशरथ एवं लवंकुश की अपेक्षा एक साथ क्या हो सकता है? पुत्र अथवा पिता। इस पिता पुत्र रूपी गुण से हम दशरथ एवं लवंकुश की अपेक्षा एक शब्द में वर्णन नहीं कर सकते हैं। इसलिये अव्यक्तव्य अर्थात् वचन के अविषय है।

४. **स्यात् अस्ति नास्ति**–अव्यक्तव्य–क्रमशा पर गुण की अपेक्षा द्रव्य नहीं है और युगपत् स्वपर गुण की अपेक्षा अव्यक्तव्य हो जंमे रामचन्द्र लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है और दशरथ तथा लवकुश की अपेक्षा युगपत है। स्वगुण की अपेक्षा एवं पर गुण की अपेक्षा जो क्रम से वर्णन किया जाता है उस भंग को आस्ति नास्ति भंग कहा जाता है। जैसे रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है, लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है।

५. **स्यात् अस्ति अव्यक्तव्य**–क्रमशः स्वगुण की अपेक्षा द्रव्य है, और युगपत स्वपर की अपेक्षा वस्तु अव्यक्तव्य है। जैसे रामचन्द्र दशरथ के अपेक्ष पुत्र हैं और दशरथ तथा लवकुश की अपेक्षा युगपत अव्यक्तव्य है।

६. **स्यात् नास्ति अव्यक्तव्य**–क्रमशः पर गुण की अपेक्षा

द्रव्य नहीं है और युगपत स्वपर गुण की अपेक्षा अव्यक्तव्य है। जैसे रामचन्द्र लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं हैं और दशरथ तथा लवकुश की अपेक्षा युगपत् अव्यक्तव्य है।

७. **स्यात् अस्ति, नास्ति अव्यक्तव्य**—क्रमशः स्वधर्म की अपेक्षा वस्तु है पर धर्म की अपेक्षा वस्तु नहीं है, युगपत् स्वपर धर्म की अपेक्षा अव्यक्तव्य है। जैसे—रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है, लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है। दशरथ और लवकुश की अपेक्षा युगपत् कहने की अपेक्षा अव्यक्तव्य है।

अनेकान्त भावः अहिंसा स्याद्वादः वाचनिक तथा ।
समन्वय विश्व शान्त्यर्थं द्वयमेव अमृतोपम् ।।

अनेकान्त भावात्मक अहिंसा है स्याद्वाद वाचनिक अहिंसा है। अनेकान्त एवं स्याद्वाद समन्वय के लिये, विश्व शांति के लिये अमृततुल्य है।

द्रव्य में स्थित समस्त गुण धर्म पर्यायों की सत्ता को स्वीकार करने से द्रव्यों की पूर्व गुणादि की रक्षा होती है। तथा मन में यथार्थ भाव होने के कारण भाव अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ दूसरों की सत्ता को स्वीकार करना है। स्याद्वाद से अन्य अविवक्षित धर्मों को वचन के माध्यम से

घात नहीं पहुंचाने के कारण वचनिक अहिंसा हुई। विश्व में जो अशान्ति विप्लव युद्ध होता है, उसका मूल कारण दूसरों की सत्ता को ठुकराना, अधिकार को स्वीकार नहीं करना, उनके सत्यांश को मान्यता नही देना। परन्तु अनेकांत एवं स्याद्वाद उपरोक्त दोषों को दूर करते हैं। जिससे विश्व में समन्वय एवं शांति स्थापना हो सकती है। दोनों सिखाते हैं तुम्हारा जो सत्य है उस सत्य को बिना त्याग किये अन्य की सत्यांश को भी स्वीकार करो, सन्मान दो।

"Right is mine जो सत्य है वह मेरा है यह अनेकांत का अमर संदेश है। परंतु Mine is right मेरा जो कुछ है वह सब सत्य है मानना अनेकांत एवं स्याद्वाद की उदारनीति के विरुद्ध है।

वे इस संकीर्ण स्वार्थपूर्ण हठग्राहिता को नहीं मानते हैं। अनेकांत से मनोभाव, हृदय उदार एवं विशाल हो जाता है। स्याद्वाद से वचन हितमित प्रिय अमृतोपम हो जाता है। अनेकांत मानसिक औषधि है एवं स्याद्वाद वाचनिक औषधि है। पहिले अनेकांत-स्याद्वाद के ऊपर गहन अध्ययन के अभाव से या कुछ संकीर्ण मनोभाव से कुछ लोग विरोध करते थे। परंतु जितना-जितना मनुष्य समाज तार्किक की ओर बढ़ा निरपेक्ष दृष्टि से देखने लगा विज्ञान

का नवीन शोध हुआ धर्म एवं दर्शनों तुलनात्मक अध्ययन हुआ तब अनेकांत स्याद्वाद का महत्त्व दिन दुगना रात चौगुना बढ़ रहा है। इसका वर्णन अन्य धर्म में यत्र तत्र आंशिक रूप में होते हुये भी विधिवत् रूप से सूक्ष्म वर्णन नहीं है। वर्त्तमान भौतिक विज्ञान जगत् में महामना सात्विक समन्वय एवं अहिंसावाद के पुजारी महा वैज्ञानिक आईन्स्टीन ने जो शोध करके जगत् को चमत्कृत कर दिया है एवं विज्ञान में एक नई क्रांति एवं दिक् परिवर्तन हुआ है उसका मूल कारण सापेक्ष सिद्धांत है।

इसके बाद अभी दार्शनिक हो, वैज्ञानिक हो या राजनैतिक सब की दृष्टि अनेकांत की ओर बढ़ रही है, यह विश्व के लिये मंगल सूचक है।

जेण विणा लोगस्स यः ववहार सव्वदा ण निव्वठई।
तेण भुवणेक गुरुणा णमो अनेकांत वायस्य:॥

जिस अनेकांत वाद के बिना लोक व्यवहार भी नहीं चलता है उस जगत् का एकमेव गुरु अनेकांत वाद को मेरा नमस्कार हो।

अष्टम परिच्छेद

आत्म धर्म सु भावना

भावः प्राणशक्ती स्यात भावः विद्युत् चुम्बकम् ।
भाव रहितेन शिवः शव भवति निदानम् ।।

भाव ही प्राण शक्ति है भाव विद्युत के समान एवं चुम्बक के समान शक्तिशाली है। भाव से रहित शिव (जीव) शव (जडवत्) हो जाता है।

भावेनौषधि गुण कर स्वर्णः भवति च शुद्धः ।
भावेन अशुद्ध जीवः शुद्ध भवति तेन सिद्ध ।।

भावना देने से औषधि गुणकारी होती है, अग्नि रूपी भावना से स्वर्ण पाषाण शुद्ध स्वर्ण हो जाता है। उत्तम भावना से ही अशुद्ध जीव भावित होकर शुद्ध हो जाता है जिससे वह सिद्ध बन जाता है।

भावेन स्वर्गः नरकः भावेन भवति सिद्धः ।
भावेव शत्रुः अहित विषं, भावेव मित्रः कल्पवृक्षः ।।

अशुद्ध भावसे नरक–शुद्ध भावसे स्वर्ग–शुद्ध भावना से जीव सिद्ध बन जाता है। कुभावना जीव में शत्रु है, विषके

समान अहितकारी है, शुभ भावना मित्र है, कल्पवृक्ष के समान फलदायी है।

कुभाव सहित आत्मा स्वयमेव स्वयं शत्रु:।
उत्तम भाव सहितं, स्वयमेव स्वयं मित्रः।।

कुभावना सहित आत्मा स्वयं स्वयं का शत्रु है, उत्तम भावना सहित जीव स्वयं स्वयं का मित्र है।

स्वयं हित वृत्तस्य स्वयमेव स्वयं गुरुः।
कुपथगामिनि आत्मा स्वयमेव स्वयं यमः।।

स्वयं जब स्वयं को हितकर मार्ग में प्रवृत्त करता है, उस समय में स्वयं स्वयं का गुरु है। कुपथगामिनी आत्मा स्वयं के लिए स्वयं यम है।

आत्मजयी जगज्जयी स्व शत्रु: स विश्वामित्रः।
आत्मजयी सुख भोगी परजयेव दुःखदम्।।

जो आत्मा-विजयी है वह जगत विजयी है और वह स्वयं के लिये मित्र है। जो स्वयं के लिये स्वयं शत्रु है वह विश्वामित्र (विश्व+अमित्र=विश्व के लिये शत्रु) है। जो आत्म विजयी है, वह सुख का भोग करता है, पराजय दुःखदायक है।

मैत्री भावना :—

समायुष्ये ममगुणे यत् भवति मित्रता ।
सर्व जीवः समयत् तेन सर्वेमित्रता ।।

सम वयस्क में, समगुण में मित्रता होती है, सर्व जीव जीव-जाति की अपेक्षा समान होने के कारण सर्व जीव में मित्रता है । मित्रता भावना से सर्व जीव प्रति समभाव एवं मित्रता भाव पोषण होता है ।

प्रमोद भावना—

गुण सदा पूज्य भवति गुणे भवति आदरः ।
गुणिषु यत् आदर भावं श्रेष्ठ गुणः प्रमोदम् ।।

गुण सदा पूज्य होता है, गुण में आदर भाव होता है, गुण सहित जो होता है वह गुणी है, इसीलिये गुण में जो आदरभाव होता है, वह श्रेष्ठ प्रमोद भाव है ।

करुणा भावना—

सर्वेजीवः सुख ईच्छन्ति दुःखे भवन्ति कातरम् ।
पर दुःख विनाशार्थ कृपा भाव कर्त्तव्यम् ।।

सर्व जीव सुख को चाहते हैं, दुःख से कातरता को प्राप्त होते हैं । इसलिए दूसरों के दुःख विनाश के लिए जो कृपा भाव किया जाता है । उसको करुणा भाव कहते हैं ।

माध्यस्थ भाव—

बहुजीवः बहु कर्म तेन भाव विचित्रम् ।
विविधेन समं भावं सर्व श्रेष्ठः माध्यस्थम् ।।

संसार में अनेक जीव हैं, अनेक कर्म हैं । इसीलिए विभिन्न जीवों में विभिन्न वैचिञ्य भाव पाये जाते हैं । उस विषम भाव के प्रति समभाव रखना सर्वश्रेष्ठ माध्यस्थ भाव है ।

।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

